वर्ष २

श्री परमात्मने नमः

भगवन्नामाङ्क

कल्याण

भगवन्नामाङ्क

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, और धर्मसंबंधी सचित्र मासिक पत्र.

संख्या

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

वार्षिक मूल्य ३)
विदेशोंके लिये ४॥)

श्रावण कृष्ण ११
संवत् १९८४
बम्बईके सत्संग-भवन-द्वारा संरक्षित.

इस अङ्कका मूल्य

श्रीहरिः
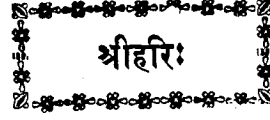
विषय-सूची।

	पृष्ठ संख्या
१ श्रीरामनामकी परायणता। (तुलसीदासजी)	१
२ नूतन वर्ष।	२
३ रसना राम भजो। (प्रेमलताजी)	४
४ श्रीहरिनामकी महिमा। (पू-अच्युत मुनिजी)	५
५ राम राम राम राम राम।	२०
६ हरि-नाम-वितरण।	२१
७ श्रीनाम-संकीर्तन (आ० गो० मदनमोहनजी)	३०
८ कल्याणकारी भगवन्नाम। (श्रीयादवजी)	३२
९ श्रीभगवन्नाम-महिमा। (ज० स्वामी अनन्ताचार्यजी)	३६
१० श्रीहरिनाम। (म० आचार्य सार्वभौम श्रीमधुसूदनजी गो०)	३८
११ रामकीर्तन।	४१
१२ नामयुग। (आ० गो० कृष्णचैतन्यजी)	४२
१३ सोई भलो जो रामहिं गावें। (सूरदासजी)	४४
१४ श्रीभगवन्नाम। (एक क्षुद्र नाम-प्रेमी)	४५
१५ ईश्वरप्रणिधानाद्वा। (पू० स्वामी मंगलनाथजी)	६६
१६ ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है। (श्रीश्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६७
१७ नामावतार। (स्वामी श्रीस्वतःप्रकाशजी)	७४
१८ नाम भजनकी महिमा (श्रीआत्मारामजी खेमका)	७६
१९ भगवन्नामसे भगवत्-प्राप्ति। (श्रीहीरालालजी गोयन्दका)	७८
२० कीर्तन ही सुगम है। (श्रीहरिस्वरूपजी एम्० ए०)	७९
२१ श्रीसीता-राम—नाम महिमा। (महन्त श्रीरघुबरप्रसादजी महाराज)	८२
२२ सच्चा सुख। (श्रीगणपतरायजी लोहिया)	८४
२३ राम नामसे मुझे शान्ति मिली। (भाई जमनालालजी बजाज)	८५
२४ श्रीराम-नाम। (राजकुमार श्रीरघुबरदासजी अमरावाला)	८६

चित्र-सूची।

	पृष्ठ संख्या
१ श्रीमुरलीमनोहर। (रंगीन) ...	मुखपृष्ठ
२ गो० तुलसीदासजी। (रंगीन) ...	१
३ श्रीअच्युत मुनिजी।	५
४ श्रीउड़िया बाबा।	५
५ अजामिल। (रंगीन)	८
६ निमाई-निताई। (रंगीन)	२१
७ श्रीयादवजी महाराज।	३२
८ श्रीविष्णुदिगम्बरजी।	३२
९ आ० श्रीमधुसूदनजी सार्वभौम। ...	३८
१० शंकराचार्यजी श्रीराजराजेश्वराश्रमजी। ...	३८
११ सूरदासजी।	४४
१२ हरिदासजी।	४५
१३ जगाई-मधाई।	४६
१४ तुकारामजी।	४७
१५ रामदासजी।	४७
१६ विजयकृष्णजी।	४८
१७ कबीरजी।	४८
१८ प० रामकृष्णजी।	४९
१९ स्वामी विवेकानन्दजी।	४९
२० रामनामका आढतिया।	५२
२१ श्रीरामशङ्कर मोहनजी।	५२
२२ श्रीनारदजी महाराज। (रंगीन) ...	५८
२३ ध्रुव-नारायण। (रंगीन) ...	५८
२४ द्रौपदी-लज्जा-रक्षण। (रंगीन) ...	६२
२५ भक्त प्रह्लाद।	६४
२६ गजराज।	६५
२७ श्रीहनुमानजी।	६५
२८ पू० स्वामी मङ्गलनाथजी।	६६

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

२५ नाम-माहात्म्य । (श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया) ८८
२६ भगवन्नाम ही उद्धारका उपाय है । (आचार्य प्रवर श्री० गोकुलनाथजी महाराज) ९२
२७ प्रेममय नाम । (श्रीभूपेन्द्रनाथ संन्याल) ९८
२८ हरिनाम जप । ९८
२९ नाममहिमा (महात्मा गांधीजी) ९९
३० श्रीहरि-नामोपदेश । (भक्तवर पं० रामप्रसादजी शर्मा) ९९
३१ सूचना १०४
३२ नामप्रेमी सन्त १०५
३३ चित्र परिचय १०७
३४ कृष्णनामसुधा (पं० रामदेवजी शर्मा) ११०

चित्र-सूची

पृष्ठ संख्या

२९ गो० स्वामी उत्तमनाथजी ६७
३० काशीमुक्ति ८३
३१ ओंकारके जापसे मुक्ति ९०
३२ सरभंगका वैकुंठ गमन ९०
३३ राजा अम्बरीषजी ९१
३४ ज० स्वामी श्रीअनन्ताचार्यजी ... ९२
३५ आ० गो० श्रीगोकुलनाथजी महाराज ९२
३६ महात्मा गांधीजी ९९
३७ महामना मालवीयजी ९९
३८ म्लेच्छकी मुक्ति १०१
३९ महामुनि बाल्मीकिजी १०३
४० मीराबाई । (रंगीन) १०७
४१ भक्त सुधन्वा १०९

कल्याणके नियम ।

१-भक्ति ज्ञान वैराग्य और सदाचार-समन्वित लेखों द्वारा जनताको कल्याणके पथ पर पहुंचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है ।

२-यह प्रति मासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है ।

३-इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित भारतवर्षमें ३) रु० और भारतवर्षसे बाहरके लिये ४॥)रु० नियत है। एक संख्याका मूल्य ।-) बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।

४-ग्राहकोंको मनीआर्डर द्वारा चन्दा भेजना चाहिये, नहीं तो वी.पी. खर्च उनके जिम्मे और पड़ जायगा।

५-इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

६-ग्राहकोंको अपना नाम, पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

७-पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड अथवा टिकट भेजना आवश्यक है ।

८-भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक कल्याणमार्गमें सहायक अध्यात्म विषयक लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें, लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख लौटाये नहीं जाते।

९-प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना मनीआर्डर आदि व्यवस्थापकके नामसे भेजना चाहिये और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि सम्पादकके नामसे भेजना चाहिये ।

व्यवस्थापक,
कल्याण कार्यालय,
गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सत्यं शौर्य्यतपःक्षमामृतवचोऽहिंसाश्च श्रद्धालुताम् ।
प्रीतिं भूतदयां जनेऽपि सकले सौहार्दमापादयन् ॥
भक्तिं कल्मषनाशिनीं भगवतीमानन्ददां वर्द्धयन् ।
कल्याणं वितनोतु नोऽभयकरः कल्याणरूपो हरिः ॥

भाग २ } श्रावण संवत् १९८४ { संख्या १

श्रीरामनामकी परायणता !

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो रामको नाम कल्पतरु, कलि कल्याण फरो ॥ १ ॥
करम उपासन ज्ञान वेदमत, सो सब भांति खरो ।
मोहिं तो सावनके अन्धहि ज्यों, सूझत हरो हरो ॥ २ ॥
चाटत रहेउँ स्वान पातरि ज्यों, कबहुं न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस, पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥
स्वारथ औ परमारथहू को, नहिं कुञ्जरो नरो ।
सुनियत सेतु पयोधि पखानन्हिं, करि कपिकटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहं, ताको काज सरो ।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर, हौं सिसु अरनि अरो ॥ ५ ॥
शङ्कर साखि जो राखि कहउं कछु, तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम नामहिं ते, तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

(गोस्वामी तुलसीदासजी)
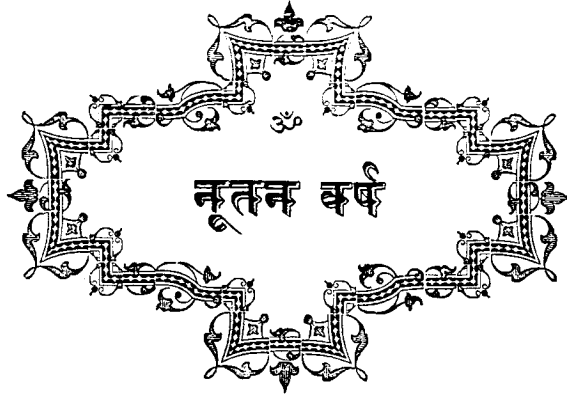
दीपशिखाकी भांति जीवनकी ज्योति क्षण क्षणमें क्षीण हो रही है । दीपकके तेलकी तरह जीवनके आधारस्वरूप श्वासोंकी सम्पत्ति प्रति-क्षण घट रही है। जीवन-सूर्यके अस्ताचलका समय समीप—अति समीप आरहा है! तब भी इस "गाफिल मुसाफिर" को चेत नहीं होता। अरे! दिन रहते रहते घर का सीधा मार्ग पकड़ ले, नहीं तो रात के अन्धकारमें पड़ कर राह भूल जायगा! बिछुड़ जायगा साथियोंसे और भटकेगा जंगल जंगलमें हताश, निराश और उदास हुआ! चेत, शीघ्र चेत! किस माया—मरीचिकामें भूल रहा है? किस मोहमदमें मतवाला हो रहा है। याद रख, यहां तेरी तृप्ति असम्भव है। तृप्ति होती तो अब तक हो न जाती? जहां गया वहींसे हाथ झड़का कर अतृप्त लौटना पड़ा। राजा बना, देवता बना, इन्द्र बना परन्तु कहीं तृप्ति नहीं हुई। तृप्तिके अथाह सागरमें निमग्न होनेमें कुछ न कुछ कसर रह ही गयी। " इतनासा और हो जाय" यह सदा ही बाकी रहा!

अब तो तू उस आनन्द-समुद्रके तटपर आ पहुंचा है। "इतना सा और हो जाय" को भूलकर कूद पड़ इस सच्चिदानन्द सागरमें! गहरी डुबकी लगा! तुझे प्रेम-रत्न मिलेगा, अमूल्य धन मिलेगा। उसे पाकर तू सचमुच तृप्त हो जायगा—सदाके लिये कृतार्थ हो जायगा! कुछ भी तो अपूर्णता नहीं रहेगी!

तोड़ दे सारे बन्धनोंको, छोड़ दे सारी लाज शरम-को! निर्लज्ज और निरंकुश कबीरका यह गीत याद करता हुआ मार गहरा गोता!

"घूंघटके पट खोल रे, तोहे राम मिलेंगे!"

यदि अब भी नहीं चेता, किनारेसे वापस लौट गया, हाथ में आये हुए अमूल्य पारसको फेंक दिया तो पीछे सिवा पछतानेके और कुछ भी उपाय हाथमें नहीं रह जायगा! इसलिये—

"जीती बाजी मत हार रे, तू पकड़ हरीको।"

ऐसा मौका फिर कठिनतासे मिलेगा। मत जाने दे हाथसे इस सुअवसरको! कालकी चक्की तो अनवरत चलही रही है। न जाने कब पिस जायगा? तू समझता है, बड़ा होता हूँ। काल समझता है कि इसकी परमायु-के दिन पूरे होरहे हैं। वास्तवमें कालकी समझ पक्की है। अतएव इस कालके भयसे कालका भरोसा छोड़कर तू तत्काल ही कालका काल बन जा! ऐसा बन जा कि, फिर काल कभी तेरे सामने अपना अस्तित्व ही न दिखा सके। वहां चला जा, जहां कभी कालकी कल्पना ही नहीं हुई! शीघ्रता कर कहीं कालको तेरी इस कल्पनाका पता लग जायगा और वह चिड़िया पर बाजकी भांति तुझ पर पहलेही हमला कर बैठेगा तो तेरी सारी आशा धूलमें मिल जायगी। कल्पनाकी सारी सृष्टि उस महाप्रलयमें नष्ट भ्रष्ट हो जायगी! अतएव गुपचुप; परन्तु त्वराके साथ इस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत कर ले!

देखता नहीं? देखते देखते यह "कल्याण" पत्रका भी एक वर्ष बातोंमें बीत गया। अभी कल-

कीसी बात है। परन्तु स्मरण रख, इस कल्याणकाही एक वर्ष नहीं बीता, इसीके साथ साथ मजदूर–सम्राट्, कंगाल, धनी, मूर्ख, पंडित, जनता, नेता, श्रोता–वक्ता, पाठक–सम्पादक, अधिक क्या सृष्टिके समस्त चराचरका कालकी गणनाके लिये कल्पित किया हुआ एक वर्ष पूरा हो गया।

विचार करो! "कल्याण" के प्यारे पाठक और पाठिकाओ! जीवनके इस पूरे एक वर्षकी घटनाओंको स्मरण कर हिसाब किताब ठीक करो! इस एक सालके लगभग पचहत्तरसे अस्सी लाख श्वासोंका परम धन तुमने किस काममें खर्च किया? इस धनको कहीं व्यर्थ या प्रमादमें तो नहीं उड़ा दिया? कहीं रत्न देकर, बदलेमें कांचके टुकड़ोंका संग्रह तो नहीं कर लिया? यदि ऐसा किया है तो बहुत बुरा किया है, इसके लिये पश्चात्ताप करो! परमात्मासे क्षमा याचना करो! स्मरण रक्खो, जो श्वास प्रभुके चिन्तन भजनमें या उसकी सेवामें जाता है वही सार्थक है, बाकी सब व्यर्थ है। यदि श्वासरूपी धनको, (भोग, त्याग, समाज, जाति, देश या धर्म किसी भी बहानेसे) असूया ईर्षा, काम-क्रोध, द्वेष-मत्सर हिंसा-प्रतिहिंसा, घृणा-उपेक्षा, व्यभिचार-अनाचार, लोभ-मोह और मद-मान आदि कुसंगियोंके सहवासमें लुटा दिया है तो तुमने बड़ी ही भूल की है! इन कुसंगियोंकी कुसंगतिका परिणाम सोचकर कलेजा कांप उठता है। परन्तु कोई चिन्ता नहीं! अब भी सावधान हो जाओ "गयी सो गयी अब राख रही को" आगेके लिये एक श्वास भी व्यर्थ मत जाने दो। घरका काम करो, व्यापार करो, देश सेवा करो, धर्म प्रचार करो, जो कुछ भी करो परन्तु श्वासकी प्रत्येक ध्वनिके साथ उसके नामकी नित्य ध्वनिको मिला दो! सबका भरोसा छोड़कर लेट जाओ उसके पावन चरणप्रान्तमें, सारा बोझा उतारकर डाल दो उसके सुरसरी–जनक चरण–नखोंमें, पूर्वके पापोंके लिये न घबराओ! उनका भार तो वह स्वयं उठावेगा। सुनी नहीं उसकी दिव्य घोषणा?

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८, ६६)

सब धर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मेरी शरण होजा, मैं तुझे समस्त पापोंसे छुड़ा दूंगा। तू चिन्ता न कर! कितने भरोसेके वचन हैं?

जानते हो शरण किसे कहते हैं? करना सब कुछ परन्तु अपने लिये कुछ भी नहीं। जैसे सती पतिके लिये सब कुछ करती है। ('सब कुछ' का यह अर्थ नहीं कि उसके बताये हुए कामोंको छोड़कर दूसरे मनमाने "आलतू फालतू" कामोंका करना!) जब सारा भार ही उसके चरणोंमें डाल देते हो तो तुम उसीके हो जाते हो, तुम्हारा अलग कोई स्वार्थ रहता ही नहीं। तुम उसके और वह तुम्हारा! जब दोनों एक ही हो गये, अपनापन अलग रहा ही नहीं, तब तुम्हें अपने लिये अलग क्या करना बाकी रहा? तुम तो अपने आपको उसके चरणोंमें सौंप कर सब कुछ कर चुके!

जब कुछ करना ही नहीं रहा तब आश्रय और भरोसा किस बातका? और वह भी किससे? दूसरे की तो कल्पना ही नहीं रही।

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

उत्तम पतिव्रताकी भांति अन्य पुरुषका अस्तित्व स्वप्नमें भी नहीं रह जाता। बस—

एक भरोसो एक बल, एक आश विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

इसका नाम है "शरण"। इस शरणका असली भाव तभी समझमें आता है जब अन्तःकरणके सम्पूर्ण पापोंकी कालिमा समूल धुल जाती है और उसमें भगवत् भावोंका सन्तत प्रवाह बहने लगता है। पापोंकी कालिमाको जड़से धोनेके लिये सबसे बढ़िया साबुन है—

--"श्रीभगवन्नाम"

आज यह तुम्हारा 'कल्याण' नूतन वर्षके अभिनन्दन-के अवसर पर उसी कल्याणकारी 'भगवन्नाम' की निधि लेकर तुम्हारे द्वार पर उपस्थित हुआ है। अनुरोध यही है कि प्रसन्नताके साथ इस परम निधिको ग्रहण करो और अपने मित्रों, बान्धवों, स्नेहियों, घरवालों, देशवासियों, मनुष्य जातिके लोगों और जीवमात्रमें यथाशक्ति इसे वितरण कर उनके सच्चे सुहृद होनेका परिचय दो।

तुलसी सो सब भांति परम हित,
पूज्य प्राणतें प्यारो।
जाते होइ सनेह राम पद,
एतो मतो हमारो॥

वही घरका है, वही मित्र है, वही परम हितैषी है, वही प्राणोंसे प्यारा है कि जिससे श्रीरामचरणोंमें प्रेम होता है।

जय सच्चिदानन्द !

हरिः ॐ

(रसना राम भजो)

(श्रीसियावल्लभ शरणजी, काशीद्वारा प्रेषित)

रसनियाँ काहे न नाम उचारो।
लोलुप भयेउ लोभ लालच बस,जाय सुजन्महिं हारो।
कामद घन दारिद दुकाल हर, सो तुम निपट विसारो॥
लघुजीवन जिय जानि भजहु नित, सियवर प्रीतम प्यारो।
काल कराल शीस पर नाचत, मूढ़ गाल जनि मारो॥
सुत बनिता धन धाम विषय सुख, दुख सम जानि निवारो।
जो आपन भल चहहु सकल बिधि, मोर कह्यो चित धारो॥
सुमिरहु नाम चारु चिन्तामणि, नाते सब परि टारो।
सेवहु सन्त अनन्त छाँडि छल, पटकि लाजको भारो॥
ऊँच कहाय कवन सुख जोपै, निज आतमा ना तारो।
'प्रेमलता' मैं मोर तोर करि, राग रोष जिय जारो॥

(२)

प्रभु भजन बिना सब जन्म गयो॥ टेक॥
नर तनु दीन कृपालु कृपा करि, जेहि लगि सो न भयो॥
भूलि रह्यो लखि जग प्रपंच मन, सुनत न बहु सिखयो॥ १॥
वरणत वेद पुराण सुखद मग, तेहि पथ मन न दयो॥
सेयेहु सन्त न कबहुँ कपट तजि, हरि गुरु पद न नयो॥ २॥
परिहरि निकट नाम अमृतनद, मृग जल चह अँचयो॥
कबहुँ न भयो निशोच पोच उर, नित तिहुँ ताप तयो॥ ३॥
करत कर्म जस तस पावत फल, लुनत सुनिज कर वयो॥
'प्रेमलता' सोइ चतुर जीव जग, नाम नेम जिन्हि लयो॥ ४॥

(प्रेमलता)
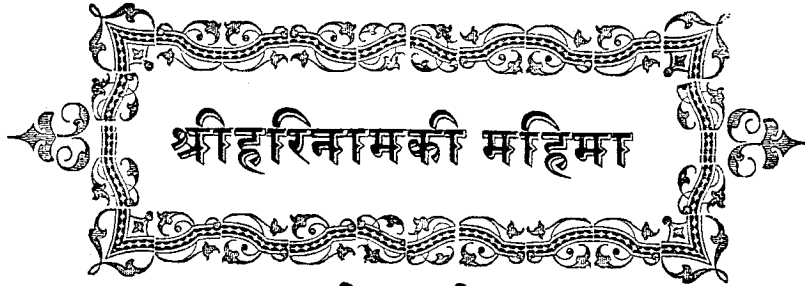
अजामिलका इतिहास।

(लेखक—' गंगातीर निवासी पूज्यपाद स्वामीजी श्रीअच्युत मुनिजी ')

न्यकुब्ज देशमें अजामिल नामक एक बड़ा ही शुद्धाचारी, श्रुतसम्पन्न, सदाचारपरायण, कोमलहृदय, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, मन्त्रज्ञ और क्षमादि गुणोंसे युक्त, सुन्दर स्वभाव वाला, पवित्र ब्राह्मण रहता था। वह अहंकाररहित होकर, गुरु, अतिथि, अग्नि और बड़ोंकी सेवा करता तथा सब जीवोंके साथ सुहृद्भाव रखता था। वह बड़ा ही साधु, मितभाषी और असूयारहित था। एक दिन पिताकी आज्ञाके अनुसार बनसे फल, पुष्प, समिधा और कुश लेकर लौटते समय रास्तेमें अजामिलने एक मदिरा पीये हुए कामी शूद्रको मदविह्वलनेत्रा वेश्याके साथ निर्लज्ज भावसे हंसते गाते और रमण करते देखा। क्षणभरकी मूक कुसंगतिसे भी बड़ा अनर्थ होता है। पवित्र ब्राह्मणयुवक अजामिल कामवश हो गया, अपनेको भूल गया और उस हतभाग्यने धर्म कर्मको तिलाञ्जलि देकर पापरूपा दासीकी सेवामें अपनेको लगा दिया। पिताकी सारी सम्पत्ति दासीके मनोरञ्जनमें लुटा दी, अपनी सत्कुलोत्पन्न युवती पत्नीको त्याग दिया। घरका धन नष्ट होजानेपर वह अन्यायसे धन संग्रह कर दासीके परिवारका पालन पोषण करने लगा। यों करते करते उसकी परमायुके अट्ठासी वर्ष पापमें बीत गये। अजामिलके दश पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटेका नाम ' नारायण ' था। 'नारायण' स्वाभाविक ही माता-पिताको बड़ा प्यारा था। अजामिल उसकी तोतली बोली सुनकर सदा ही उसमें आसक्त हुआ उसकी क्रीडाओंको देख देखकर प्रसन्न हुआ करता। इस प्रकार विषयोंमें भूले हुए अजामिलका मृत्युकाल समीप आ गया, परन्तु अत्यन्त आसक्तिके कारण उस समय भी उसका मन बालक 'नारायण' में लगा हुआ था। उसने मृत्युकालमें यमराजके भयानक दूतोंको देखते ही घबराकर दूर खेलते हुए अपने पुत्र नारायणको बड़े ऊँचे स्वरसे ' नारायण ' ' नारायण ' कहकर पुकारा। मरते हुए अजामिलके मुखसे अपने प्रभुका पवित्र नाम सुनतेही भगवान् विष्णुके पार्षद सहसा वहां आगये और उन्होंने अजामिलके आत्माको निकालनेमें लगे हुए यमदूतोंको बलपूर्वक रोक दिया। भगवान्‌के सभी पार्षद नवीन किशोर अवस्थावाले, कमलनयन, पीताम्बर पहने हुए, किरीट मुकुटधारी, सुन्दर चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मादिसे विभूषित थे। यमदूतोंने यह नयी बात देखी, उन्हें पता नहीं था कि हमारे प्रभु यमराजके सिवा कोई और दूसरा भी ईश्वर है, उन्होंने भगवान्‌के पार्षदोंसे सब बातें पूछीं। अजामिलके पाप सुनाये और अन्तमें कहा कि इस अकृत-प्रायश्चित्त पापीको हम लोग अपने स्वामी दण्डधर यमराजके पास लेजायंगे। वहां यह अपने पापका समुचित दण्ड पाकर शुद्ध हो जायगा! भगवान् विष्णुके दूतोंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः॥ ७॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥ ८॥
स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे॥ ९॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥
न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिः,
तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैः
तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥
नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते,
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेः,
गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥
अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ।
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥
साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥
पतितः स्खलितोभग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम् ॥ १५ ॥
गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ।
प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥
तैस्तान्यघानि पूयंते तपोदानजपादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशांघ्रिसेवया ॥ १७ ॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
सङ्कीर्तितमघं पुंसोदहेदेधो यथानलः ॥ १८ ॥
यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः॥ १९ ॥

(श्रीमद्भागवत ६ । २ । ७ से १९)

"इस अजामिलने इस एक जन्म क्या, करोड़ों जन्मोंके सभी पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला, क्योंकि इसने विवश होकर (न केवल प्रायश्चित्त मात्र, किन्तु) स्वस्त्ययन (मोक्षके देनेवाले) हरिनामका उच्चारण किया ॥ ७ ॥ जब इसने पहले भोजनादिकालमें 'नारायण आय' इस अपभ्रंश भाषामें चतुरक्षर 'नारायण' नामका उच्चारण किया तभी इस पापिष्ठके सम्पूर्ण पापोंका प्रायश्चित्त हो चुका ।"

"यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोदानक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥"

"जिसके स्मरण और नामोच्चारणसे तप दानादि कर्मोंकी न्यूनता शीघ्रही पूर्ण हो जाती है, उस अच्युतको मैं नमस्कार करता हूं ।"

इस स्मृतिसे तो यह प्रतीत होता है कि नामोच्चारण तपदानादि कर्मोंका अङ्ग है, यदि यही बात है तो फिर वह अकेला पापोंका नाश कैसे कर सकता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि 'खादिरो यूपो भवति' 'खादिरं वीर्य कामस्य ।" इस श्रुतिके विषयमें कहे हुए संयोग-पृथक्त्व* न्यायसे केवल नामोच्चारण भी पापनाशक होता है।

"अवशे नापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव" ॥

अवश होकर भी हरिकीर्तन करने पर पापीके सम्पूर्ण पाप उसे छोड़कर उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सिंहसे डरकर मृग भाग जाते हैं । इत्यादि अनेक पुराणवचनोंसे नामोच्चारणकी स्वतन्त्रता प्रतीत होती है । यह वचन अर्थवाद (स्तुतिमात्र) नहीं है । अर्थवाद वह होता है जो किसी विधिका शेष हो । यह किसी विधिका शेष नहीं है । देवताधिकरणमें* मन्त्रार्थवादोंकी प्रमाणता सिद्धकी गयी है इसलिये आभासमात्र भी नारायण नाम सम्पूर्ण पापोंका प्रायश्चित्त है ॥ ८ ॥ ब्राह्मणका सोना चुरानेवाला, मित्रद्रोही, गुरुकी स्त्रीके प्रति गमन करनेवाला, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, पिता, माता और गौका वध करने-

* संयोगपृथक्त्व न्याय पूर्वमीमांसाका है और देवताधिकरण उत्तर मीमांसाका है । इस विषयपर विस्तार इसीलिये नहीं किया गया कि पाठकोंको समझनेमें क्लेश होगा । कोई जानना चाहे तो किसी मीमांसकसे पूछकर निश्चय करलें । —लेखक

वाला, तथा और भी जितने पापी हैं। उन सबके लिये श्रीविष्णुका नामोच्चारण ही प्रायश्चित्त है क्योंकि नामोच्चारणसे परमेश्वरमें सेव्य (सेवा करने योग्य है ऐसी) बुद्धि उत्पन्न होती है अथवा इसका यह अर्थ है कि परमेश्वरको नामोच्चारक पुरुषके विषयमें यह बुद्धि उत्पन्न होती है कि यह मेरा है, इसकी सर्वथा रक्षा करनी चाहिये। या ऐसा अर्थ भी हो सकता है कि नामोच्चारण करते करते परमेश्वरका ज्ञान (ब्रह्मविद्या) उत्पन्न हो जाती है ॥ ९ ॥ १० ॥ वेदके ज्ञाता मनु आदि महानुभावोंसे कहे हुये द्वादशाब्दादि (बारह वर्षके) व्रत प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी शुद्धि नहीं होती जैसी कि हरिनाम पदोंके उच्चारणसे होती है क्योंकि नामोच्चारण करनेसे मनके अन्दर महायशस्वी परमेश्वरके गुणोंका प्रकाश होता है। व्रत तो केवल पापकी ही निवृत्ति कर सकते हैं ॥ ११ ॥ व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे अत्यन्त शुद्धि नहीं होती क्योंकि प्रायश्चित्त करने पर भी तो मन पाप मार्गमें जाता है। अत्यन्त शुद्धि होती तो मन पापमार्गमें क्यों जाता? अतएव जो लोग पापोंका समूल नाश कर अत्यन्त शुद्धिकी इच्छा करते हैं (उनके लिये हरिका नामोच्चारणही प्रायश्चित्त है) क्योंकि नामोच्चारण 'सत्वभावन' (पापके मूल अज्ञानको नष्टकरके अन्तःकरणको अत्यन्त शुद्ध) कर देता है ॥ १२ ॥ इसने भगवान्‌के पूरे नामका उच्चारण किया है न कि एक देशका, वह भी मरते समय जब कि फिर पाप होनेकी सम्भावना ही नहीं है। मरण समयमें जैसे कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतोंका होना कठिन है वैसे ही नामोच्चारण भी कठिन है। इस नामोच्चारणसे ही इसके सम्पूर्ण पापोंका प्रायश्चित्त हो गया है इसलिये इसको तुम लोग कुमार्गमें न ले जाओ ॥ १३ ॥ संकेतसे (पुत्रके नाम नारायणसे पुकार कर) हो, हंसीसे (हे कृष्ण! तेरी धर्म मर्यादा रासक्रीडामें देख ली यों कह कर) हो, स्तोभसे (गीतका आलाप पूरण करनेके लिये "हरे" कहकर) हो, हेलनसे (जो कृष्ण अनेक ब्रह्माण्डोंको धारण कर रहा है उसने गोवर्धनके उठानेमें क्या श्रम किया? यह तो हमारे भाग्यसे हुआ इस प्रकारकी अवज्ञासे) हो, वैकुण्ठ भगवान्‌का नामोच्चारण अशेष (वासना पर्यन्त) पापोंका नाश कर देता है। इस बातको शास्त्रका रहस्य जाननेवाले विद्वान् भलीभांति समझते हैं ॥ १४ ॥ जो पुरुष (पुरुष कहनेसे वर्णाश्रमादिका भी नियम नहीं) ऊंचे मकानसे गिरते समय, चलते चलते मार्गमें पैर फिसल जानेपर, अङ्गभङ्ग हो जाने पर, सर्पादिसे डसे जाने पर, ज्वरादिसे पीड़ित होने पर, युद्धादिमें आघात लगने पर अवश होकर "हरि" (इतना ही) कहता है वह नरकको नहीं प्राप्त होता।१५। महर्षियोंने समझकर बड़े पापोंके बड़े और छोटे पापोंके छोटे प्रायश्चित्त कहे हैं ॥ १६ ॥ इसलिये इन तप-दान-व्रतादिरूप प्रायश्चितोंसे वही पाप नष्ट होते हैं जिनके लिये वह प्रायश्चित्त होते हैं परन्तु पापोंसे उत्पन्न हुआ उनके हृदयका वासनारूपी सूक्ष्म पाप नष्ट नहीं होता परन्तु 'ईशांघ्रिसेवा' (श्रवण कीर्त्तनादि भगवद्भक्ति) से वासना भी नष्ट हो जाती हैं। तात्पर्य यह कि बड़े बड़े पाप भी एकबार उच्चारण किये हुए भगवन्नामसे वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे दीपकके प्रकाशसे गाढ़ अन्धकार! नामोच्चारणकी आवृत्तिसे (याने बारबार नामका उच्चारण करनेसे) अन्य पापोंकी अनुत्पत्ति होती है। जैसे जब तक दीपकका प्रकाश रहता है तब तक अन्य अन्धकारकी उत्पत्ति नहीं होती। इसलिये बारबार नामोच्चारणसे वासनाका नाश होने पर हृदयकी शुद्धि और पापका नाश, ये दोनों कार्य होते हैं। इसीलिये पुराणोंमें :—

'स्मरतां तमहर्निशं गुणानुवादः खलु सत्वभावनः'

इत्यादि वाक्योंसे आवृत्तिका विधान किया गया है। हरिनाम उच्चारणसे ही अजामिलके सब पापोंका क्षय हो गया और महापुरुषोंके दर्शनसे इसकी वासनाका क्षय होगया ॥१७॥ यदि बालक अज्ञानसे काष्ठमें अग्नि डाल दे तो भी वह जैसे काष्ठको जलाता ही है वैसे ही ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे कीर्तन किया हुआ हरिनाम कीर्तन करनेवाले पुरुषके सब पापों को भस्मकर ही डालता है ॥१८॥ यदि कोई शंका करे कि, विद्वानोंकी सभामें उपदेश न किया हुआ और श्रद्धासे रहित

नामोच्चारण प्रायश्चित्त* कैसे हो सकता है ? इस पर कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष किसी उत्तम औषधके प्रभावको बिना जाने भी अकस्मात् उसे खाले तो भी उससे आरोग्यता और बल पुष्टि प्राप्त होती ही है, वैसे ही उच्चारण किया हुआ नामरूप मन्त्र भी अपना गुण (पाप निवृत्ति) करता ही है, क्योंकि वस्तुकी शक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती !

कोई कहे कि 'नाम माहात्म्यके वचन अर्थवाद (स्तुतिमात्र) होनेसे स्वार्थमें प्रमाण नहीं है तो कहते हैं कि नहीं, यह बात नहीं है।

"अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः ।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम् ॥"

"जो मनुष्य हरिके नाममें अर्थवादकी कल्पना करता है वह मनुष्योंमें पापिष्ठ अवश्य नरकमें गिरता है।" इत्यादि वचनोंसे अर्थवादित्व कल्पनाका दोष स्पष्ट है।१९।

इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुके दूतोंने मरते हुए ब्राह्मण अजामिलको यमपाशसे छुड़ाकर बचा लिया। यमदूत हारकर धर्मराजके पास जाकर पुकारे। इधर इन सारी बातोंको देख सुन कर और यमराजके भयावने दूतोंको गया देखकर अजामिल निर्भय हुआ और उसने ज्योंही प्रणाम दण्डवत् करके विष्णुदूतोंसे कुछ कहना चाहा त्यों ही वे सहसा अन्तर्द्धान हो गये। अजामिल पश्चात्ताप करने लगा। विष्णुदूतोंके मुखसे सुने हुए उपदेश और उन महात्माओंके दर्शनसे और पुत्रोपचारित नारायण नामोच्चारणसे पापमुक्त तथा विशुद्ध हुए अजामिलने हरिद्वार जाकर इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर मनको आत्मामें लगा दिया। फिर चित्तको एकाग्रकर उसे ज्ञानमय परब्रह्मस्वरूपमें मिला दिया। उसी समय विष्णुके उन्हीं पार्षदोंने फिर वहां आकर उसे दर्शन दिये और तब उसने अपने पूर्व शरीरको त्यागकर परम मनोहर विष्णुरूपको पाया और उन पार्षदोंके साथ ही वह भगवान्के नित्यधामको चला गया। अजामिलके परम धाम चले जानेकी कथा कहनेके बाद श्री शुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहते हैं:—

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा,
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः,
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥
नातः परं कर्म निबन्धकृन्तनं,
मुमुक्षुतां तीर्थपदानुकीर्त्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो,
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ।४६।
य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥४७॥
न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ।
यद्यप्यमंगलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥४८॥
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥
(श्रीभागवत स्कन्ध ६। २। ४५ से ४९)

"यह दासीपति अजामिल जिसके स्वदार-नियमादि सब धर्म नष्ट हो चुके थे, जो चोरी आदि निन्दित कर्मोंके कारण ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो चुका था, जो यमदूतोंके द्वारा नरकमें गिरना ही चाहता था, भगवन्नामोच्चारणसे तत्क्षण ही यमके पाशसे मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ अतएव तीर्थपाद भगवान्के नाम-कीर्तनसे बढ़कर मोक्षकी इच्छावालोंके लिए पापमूलों (पापवासना) की जड़ उखाड़नेवाला और कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि हरिनाम कीर्तनसे मन फिर दुराचारोंमें आसक्त नहीं होता। अन्यान्य प्रायश्चित्तोंसे तो मन रजोगुण और तमोगुणसे मलिन होकर दुराचारमें पुनः प्रवृत्त हो जाता है ऐसा देखनेमें आता है ॥ ४६ ॥ इस पापनाशक और परम गुह्य इतिहासको जो पुरुष श्रद्धासे सुनता और कीर्तन करता है वह कभी नरकमें नहीं जाता,

* स्मृतियोंमें वर्णन है कि प्रायश्चित्तका निर्णय विद्वानोंकी सभा करे ।

उसको यमदूत कभी देख भी नहीं सकते। अमङ्गल (अतिपापी) भी विष्णुलोकमें आदर पाता है ॥४७॥४८॥ मरते समय विवश होकर पुत्रकी भावनासे भी हरिनाम उच्चारण करनेसे अजामिल भगवान्‌के धामको प्राप्त हो गया। तब सावधान दशामें श्रद्धाभक्तिसे युक्त होकर साक्षात् भगवान्‌की ही भावनासे नामकीर्तन करनेवाले निरपराध पुरुषके भगवद्धामकी प्राप्तिमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ४९ ॥

यमराजके दूतोंने यमराजसे पूछा कि हे भगवन् ! आपसे भी ऊपर कोई ईश्वर है ? यमने कहा—

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च,
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा,
नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां,
बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्म-
निबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥१३॥

अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या,
मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा,
भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः
सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५॥

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा,
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां
चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६॥

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः,
परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ।
प्रायेण दूता इह वै मनोहरा-
श्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥१७॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि,
दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ।
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो,
मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८॥

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥१९॥

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥२१॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥२३॥

एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां,
सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि,
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं,
देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्ड मर्हन्त्यथ यद्यमीषां,
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ।२६।

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा,
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्ता-
न्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द–
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम्।
निष्किञ्चनैः परमहन्सकुलैरसङ्गै–
र्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥२८॥

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं,
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि,
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥२९॥

तत्क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो,
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां,
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने॥३०॥

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि कौरव्य ! विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतम्॥३१॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः।
यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः॥३२॥

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्ट,
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात्॥३३॥

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन् महित्वं,
संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशंकमाना,
द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन्।३४।

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भ संभवः।
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन्॥३५॥

(श्रीमद्भागवत ६। ३। १२ से ३५)

"तुम तो मुझको ही पर समझते हो परन्तु ऐसी बात नहीं है मुझसे और इन्द्र, वरुणादि सब लोकपालोंसे भी पर (उत्कृष्ट) चराचर जगत्का और एक ईश्वर है, मैं तो उस ईश्वरका एक किंकर हूं और जंगमोंमें से भी केवल पापी मनुष्योंका ही ईश्वर हूं। वह तो सर्वेश्वर है। जिसके अंश ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके द्वारा क्रमशः इस जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलय होता है, जिसमें ऊर्ध्वतिर्यक् तन्तुओंमें पटकी तरह (सूतमें कपड़ेकी तरह) यह सारा विश्व ओतप्रोत है। नाथे हुए (नाकमें पिरोई हुई रस्सीसे बँधे हुए) बैलकी तरह सब लोक जिसके वशमें हैं॥ १२॥ जो अपनेसे उत्पन्न हुई तंती (लम्बी रस्सी) के स्थानापन्न वेदरूपी वाणीमें ब्रह्मादि नामरूपी दामों (रस्सीके छोटे छोटे टुकड़ों) से ब्राह्मणादि जनोंको बांधे हुए हैं (तत्तदधिकार प्राप्त कर्मोंमें नियुक्त किये हुए हैं) जैसे कोई लम्बी रस्सीमें खण्ड रस्सियोंसे बैलोंको बांधता है वैसे ही यह सब लोग नाम कर्मरूपी बन्धनोंसे बँधे हुए अतएव डरे हुए जिसकी बलि वहन करते हैं याने अपने अपने कर्मोंसे जिसकी आराधना करते हैं वह सर्वेश्वर है॥ १३॥ औरोंकी तो बात ही क्या है ? मैं (यम) निर्ऋति, वरुण, सोम, अग्नि, महादेव, पवन, सूर्य, ब्रह्मा, आदित्य, विश्वेदेवा, वसु, साध्य, मरुत, रुद्र, सिद्ध, मरीचि आदि प्रजापति, बृहस्पति आदि तथा रजोगुण और तमोगुणके स्पर्श तकसे रहित भृगु आदि सात्विक महर्षिगण भी जिस की चेष्टा (मरजीको) नहीं जानते हैं॥ १४॥ ॥१५॥ जैसे रूप आदि विषय अपने प्रकाश करनेवाले चक्षुरादि इन्द्रियोंको नहीं देख सकते वैसे ही स्थावर जंगम शरीरधारी सब जीवोंके हृदयमें अवस्थित सर्वव्यापक इन्द्रियोंसे पर जिस ईश्वरको जीव ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन, चित्त और शास्त्रादिसे नहीं देख सकते, वही मुझसे पर ईश्वर है॥१६॥ उस स्वतन्त्र, सर्वेश्वर, मायापति, महात्मा परमेश्वर हरिके मनोहर स्वरूप दूतगण प्रायः उसीके सदृश रूप गुण और स्वभावसे सुशोभित हुए इस संसारमें विचरते रहते हैं॥ १७॥ भगवान् विष्णुके वे महाअद्भुत दूत देवताओंके द्वारा भी पूजित होते हैं जिनका दर्शन प्रत्येक पुरुषके लिये दुर्लभ है। वे भक्तिमान् मनुष्योंकी मुझ (यमराज) से और काल कर्मादिसे सब प्रकारसे सर्वत्र रक्षा किया करते हैं॥ १८॥ यहां पर यह शंका होती है कि जब वे भक्तिमान् पुरुषकी ही रक्षा करते हैं तो फिर उन्होंने अधर्मी अभक्त अजामिलकी रक्षा क्यों की ?

इसके उत्तर में कहते हैं कि साक्षात् भगवत्प्रणीत धर्मको तो ऋषि, देवता और सिद्धगण भी नहीं जानते, तब असुर, मनुष्य, विद्याधर और चारण तो किस प्रकार जान सकते हैं ? १९॥ स्वयम्भू ब्रह्मा, भगवान् शिव, नारद, सनत्कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और मैं (यम) ये बारह जनही उस गुह्य, दुर्बोध और विशुद्ध भागवतधर्मको जानते हैं जिसके जाननेसे मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ २१॥ नाम-कीर्तनादिसे भगवान् वासुदेवमें प्रेमलक्षणा भक्तिका होना ही इस लोकमें पुरुषोंका श्रेष्ठ धर्म है यही महर्षियोंने बतलाया है ॥ २२ ॥ हे पुत्रो ! हरिनामके उच्चारणका माहात्म्य तो देखो। पुत्रके भरोसे धोखेसे नामका उच्चारण कर महापातकी अजामिल मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया ॥ २३ ॥ (शंका) नामाभाससे ही सर्व पापोंका क्षय कैसे हुआ ? श्रद्धा भक्तिकी भी तो आवश्यकता है। (उत्तर) भगवान्के भक्तवत्सल, पतितपावनादि गुण नाम; कंसारि, रावणारि आदि कर्मनाम और वासुदेवादि जन्मनामोंका कीर्तन ही समस्त पापोंके क्षयके लिये "अलम्" (पर्याप्त समर्थ) है अथवा यहां 'अलम्' का अर्थ निषेध है (पर्याप्ति अर्थ होनेसे–एतावता यह तृतीया नहीं हो सकती) याने सर्व पापक्षयके लिये इतनेकी आवश्यकता ही नहीं ! क्योंकि भगवान्के अनेक नामोंमेंसे किसी एकके भी असम्यक् उच्चारणसे भी सर्वपापक्षयकी सिद्धि हो सकती है । अजामिलने 'नारायण' नामसे पुत्रको पुकारा था, नारायणको नहीं । विकुश्य होकर पुकारा था, श्रद्धापूर्वक नहीं । अजामिल पापी था, शुद्ध नहीं, मरण-क्लेशसे विवश था, स्वस्थचित्त नहीं। महापापी था, क्षुद्रपापी नहीं ! ऐसा पातकी भी केवल पापनाश मात्रको ही प्राप्त नहीं हुआ वरन् मुक्तिको प्राप्त हो गया ! श्रद्धा भक्ति आदिकी विधि तो वासनाके क्षयके लिये है, न कि पापनाशके लिये ॥ २४ ॥

(शंका) इससे तो फिर द्वादश वर्षादि व्रतोंका प्रतिपादन करनेवाली स्मृतियां व्यर्थ हो जायंगी । (उत्तर) धर्मशास्त्रप्रणेता महाजन प्रायः इस भागवत धर्मको नहीं जानते । जैसे मृतसंजीवनी औषधको न जाननेवाले वैद्य रोगनाशके लिये त्रिकुटक निम्बादिकी व्यवस्था करते हैं वैसे ही पूर्वोक्त स्वयम्भू ब्रह्मा आदि बारह भागवतधर्मके जाननेवालोंको छोड़ कर अन्यान्य धर्मशास्त्रप्रणेता महाजन इस गुह्य धर्मको न जान कर ही द्वादशाब्दि प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करते हैं। या मायादेवीके प्रभावसे मोहित बुद्धिजन पुरुषोंके सदृश अर्थवादों से ("अपामसोममसृताअभूम" हम सोम पीयेंगे, अमर हो जायंगे इत्यादि) मनोहर वेदत्रयी (कर्मकाण्ड विभाग) में आसक्तबुद्धि होकर उसे ही अत्यन्त मधुर समझ लेता है और उसीमें श्रद्धासे प्रयुक्त होकर बड़े बड़े कर्मोंको करता है ! उसे अल्पा-यासवाले शुभ कर्म अच्छे नहीं लगते । लोकमें भी प्रायः देखा जाता है कि धनी पुरुषोंको बहुमूल्य औषधमें ही श्रद्धा होती है, अल्पमूल्यकी अत्यन्त गुणकर औषधमें उनकी श्रद्धा नहीं होती, इसीप्रकार प्रायश्चित्तादि बहु परिश्रम–साध्य कर्मोंमें लोगोंकी प्रवृत्ति होगी, अल्प परिश्रम-साध्य हरिनाममें प्रवृत्ति नहीं होगी, यों इसके ग्राहकों का अभाव समझकर ही उन्होंने इसकी व्यवस्था नहीं दी। अथवा जैसे अपने वशमें स्थित हुए सिंहका कुत्ते गीदड़ादि-के हटानेके लिये कोई प्रयोग नहीं करता वैसे ही अति तुच्छ पापोंके लिये हरिनाम कीर्त्तनका उपदेश नहीं किया गया। अथवा नाम माहात्म्यके ज्ञानसे सब की मुक्ति हो जायगी तो संसारका उच्छेद ही हो जायगा इस भयसे नामका उपदेश नहीं किया । अस्तु ! अब नामकीर्तन पापोंके क्षयका साधन है इसी विषय पर फिर विचार किया जाता है ।

(शङ्का) फलश्रुतिके अर्थवादत्व निराकरणसे इसका तो निश्चय हो चुका है फिर विचार क्यों किया जाता है?

(उत्तर) स्थूणानिखनन* न्यायसे अन्यान्य शङ्काओंको दूर करनेके लिये ! इस विचारका "प्रयोजन" हरिनाममें अपने चित्तका समाधान है । यद्यपि नामकी महिमामें आक्षेप करना नरकपातका हेतु

* पक्का करनेके लिये गड़े हुए खूंटेको हिलाकर दुबारा गाड़ते हैं, यही "स्थूणानिखननन्याय" कहलाता है—लेखक ।

है तथापि खण्डनके लिये किये हुए आक्षेप भी मननरूप होनेसे उपासनाके सदृश ही हैं 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः पांडित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्।' इत्यादि श्रुतियोंसे मनन की विधि सिद्ध ही है। विचारके पांच अङ्ग होते हैं। (१) विषय (२) सन्देह (३) पूर्वपक्ष (४) उत्तर-पक्ष और (५) प्रयोजन, इनमें (१) प्रयोजन तो ऊपर बतलाया जा चुका है ! इसका (२) विषय है "रामनाम"। अब सन्देह पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष तीन बाकी रहे जिनमें (३) सन्देह यह है कि पापनाशके लिये स्मृतियोंमें द्वादशाब्द कृच्छ्र चान्द्रायणादि अति कठिन तपदानयज्ञादि लिखे हैं, नामकीर्त्तन अति सुगम है, उसे छोड़कर स्मृतिविहित कठिन प्रायश्चित्तोंमें कोई भी पुरुष प्रवृत्त नहीं होगा तो उनमें अननुष्ठान (न करना) लक्षण अप्रामाण्य होगा। जैसे पुराण वेद-मूलक है वैसे स्मृतियां भी वेदमूलक हैं उनमेंसे किसीका भी अप्रामाण्य नहीं होना चाहिये।"

अब यहांसे पूर्वपक्ष आरम्भ होता है।

(४) पूर्वपक्ष। " विकल्प, व्यवस्था और समुच्चय इन तीनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन करनेसे ही विरोध दूर हो सकता है। पापनाशकी इच्छावाला पुरुष नाम-कीर्त्तन करे या स्मृतिविहित व्रतादि करे, यह तो विकल्प है। किसी अधिकारीके लिये नामकीर्तन पापक्षयका साधन है किसीके लिये स्मृतिविहित प्रायश्चित्त। यह व्यवस्था है। दोनों करने चाहिये, एकसे पापक्षय नहीं हो सकता। यह समुच्चय है। इन तीनोंमेंसे किसी एकका भी अवलम्बन करनेसे विरोध दूर हो सकता है अन्यथा विरोध बना ही रहेगा।

विकल्प, व्यवस्था और समुच्चय किसको कहते हैं ?

विकल्पादि तीनों पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसामें प्रसिद्ध हैं, पाठकोंके ज्ञानार्थ उत्तरमीमांसाके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

विकल्पका उदाहरण—

"विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात्" (ब्रह्मसूत्र ३।३।५९)

शाण्डिल्य दहर वैश्वानरादि कतिपय अहंग्रह उपासना इस विचारका विषय है इसमें सन्देह यह है कि एक साधकको एक ही उपासना करनी चाहिये या इच्छानुसार एक दो या बहुत ! पूर्वपक्ष कहता है शाण्डिल्य दहरादि उपासनाओंमें ध्येय ब्रह्म एक ही है विकल्पमें कोई नियामक नहीं इसलिये अपनी इच्छानुसार एक दो या बहुत करो ! अन्तमें उत्तरपक्षका कथन है कि उपासनाका फल ईश्वर साक्षात्कार है। वह एक ही उपासनासे हो सकता है दूसरी व्यर्थ है एक तो यह नियामक है और दूसरा नियामक उपासनासे जो ईश्वर साक्षात्कार होता है वह इन्द्रियादि प्रमाणजन्य तो है नहीं। परन्तु निरन्तर ध्यान करनेसे ध्येय ब्रह्ममें तादात्म्याभिमानसे जन्य है। वह अभिमान एक उपासना करके फिर उसे छोड़कर दूसरी करनेसे चित्तमें विक्षेप हो जानेके कारण कैसे हो सकता है ? अतएव वैयर्थ्य और विक्षेप इन दो नियाम-कोंमेंसे कोई भी एक करनी चाहिये। इसका नाम है "विकल्प"।

व्यवस्थाका उदाहरण—

"गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः"

(ब्रह्मसूत्र ३।३।३०)

ब्रह्मोपासकको ब्रह्मप्राप्तिके लिये अर्चिरादि उत्तर मार्ग कहा है यह इस विचारका विषय है। सन्देह यह है कि सगुण ब्रह्मवित् और निर्गुण ब्रह्मवित् इन दोनोंके लिये उत्तरमार्ग है या एकके ही लिये। पूर्वपक्ष कहता है, दोनों ही ब्रह्मवित् हैं। दोनोंके लिये होना चाहिये। उत्तरपक्षका कथन है कि, उपासनासे प्राप्त होनेवाले फल ब्रह्मलोक 'वैकुण्ठ' कैलासादि देशान्तरमें हैं, इसलिये वहां मार्ग युक्त ही है। ब्रह्मज्ञानका फल तो रोग निवृत्ति-की तरह अज्ञान निवृत्ति मात्र है, वहां मार्गकी क्या आवश्यकता है ? सुतराम् मार्ग उपासकके लिये है

ज्ञानीके लिये नहीं । यह " व्यवस्था है " ! व्यवस्थाका दूसरा उदाहरण यह है कि, गीतामें कर्मयोग और ज्ञानयोग दो योग बतलाये हैं वहां उनकी अधिकारी भेदसे व्यवस्था है—मलिनान्तःकरणके लिये कर्मयोग और शुद्धान्तःकरणके लिये ज्ञान योग !

समुच्चयका उदाहरण—

"तदभावोनाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च (ब्र० सू० ३ । २ । ७)

"अतः प्रबोधोस्मात् । (ब्र० सू० ३ । २ । ८)

यहां जीवके सुषुप्ति स्थानके विषयमें विचार है । " आसु तदा नाडीषु सुप्तो भवति" इस श्रुतिसे नाडियोंमें प्रवेश प्रतीत होता है " ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते " इस श्रुतिसे पुरीततमें और " य एषोऽन्तर्हृदयआकाशस्तस्मिञ्छेते । " इस श्रुतिसे आकाश शब्द वाच्यब्रह्ममें प्रतीत होता है । यहांपर पूर्वपक्ष कहता है कि इन नाड़ी आदि स्थानोंमें विकल्प होना चाहिये क्योंकि सुषुप्तिरूप प्रयोजन एक है, जहांपर एक प्रयोजन हुआ करता है जैसे " व्रीहिभिर्यजेत" "यवैर्यजेत "। पुरोडाश रूपी प्रयोजन एक होनेसे व्रीहि और यवका विकल्प है, इस लिये यहां भी कभी जीव नाड़ियोंमें सोता है कभी पुरीतत् में और कभी ब्रह्ममें सोता है । उत्तरपक्ष कहता है कि यहांपर एक प्रयोजन नहीं है । अतएव भिन्न उपयोग सम्भव है । नाड़ियां तो चक्षुरादि स्थानोंमें विचरते हुए जीवको हृदयनिष्ठ ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये मार्गभूत हैं, हृदयवेष्टन रूपी पुरीतत् घरकी तरह आवरक (परदा) है, ब्रह्म पर्यङ्ककी तरह आधार है। जैसे मनुष्य द्वारसे प्रवेश करके घरके भीतर जाकर पलंगपर सोजाता है वैसे ही नाड़ीद्वारा पुरीततमें प्रवेश करके जीव ब्रह्ममें सोता है । इसलिये यहांपर नाड़ी पुरीतत् और ब्रह्म इन तीनोंका समुच्चय है । यही ' समुच्चय ' है । अब मूल विषयपर आते हैं (पूर्वपक्षकाकथन ही चालू है)

"दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत "

"स्वर्गकी इच्छावाला पुरुष दर्श पौर्णमास यज्ञ करे । "दर्श और पौर्णमास दो जुदे जुदे यज्ञ हैं । दोनोंको करनेसे स्वर्ग होता है इसलिये दोनों का समुच्चय है नामकीर्तन और स्मृतिविहित व्रतादिके विषयमें ' विकल्प ' और, व्यवस्था ' तो बन नहीं सकते क्योंकि पापक्षयको उद्देश्य करके पुराणोंमें नामकीर्तन और धर्मशास्त्रोंमें द्वादशाब्दि दोनों ही नित्यवत् सुने जाते हैं । ' विकल्प माननेपर एक पक्षमें बाध हो जायगा । इससे शब्दका स्वारस्यभंग होगा । अधिकारी विशेष या देशकाल विशेषसे व्यवस्था माननेपर सामान्यसे श्रुत शब्दकी विशेषमें लक्षणा करनेसे भी 'शब्द स्वारस्यभंग ' होता है इसलिये यहांपर समुच्चय हो सकता है । (शङ्का) समुच्चयमें भी स्वारस्यभंग उसी प्रकार बना हुआ है क्योंकि पुराण नामकीर्त्तनको और स्मृतियां व्रतादिको निरपेक्ष (एक दूसरेकी अपेक्षा न रखनेवाले) साधन बतलाती हैं । अब यहां प्रत्येकको दूसरेकी अपेक्षा होनेसे वही दोष है । (उत्तर) ऐसा नहीं कहा जासकता । निरपेक्षताका अर्थ दूसरे साधनका अभाव है सो न तो पुराण वाक्योंका ही ऐसा अर्थ है और न स्मृति वाक्योंका ही । वे तो अपने अपने विषयकी साधनता बतलाते हैं । दूसरा साधन नहीं है, ऐसा कोई नहीं कहते । ऐसा माननेसे वाक्यभेद दोष आता है, एक वाक्यके दो अर्थ करनेपर यह वाक्य भेद नामक शब्द दूषण है । इसलिये यहांपर अन्य साधनके अभावका निश्चय अनुपलब्धि (यदि यहांपर घट होता तो दीखता, नहीं दीखता है इसलिये है ही नहीं, यह अनुपलब्धिका उदाहरण है) प्रमाणसे करना होगा सो यहां पर अनुपलब्धि है ही नहीं । दोनोंके साधन होनेमें प्रमाण मिलते हैं इसलिये 'समुच्चय' पक्षमें शब्द-स्वारस्यभंग दोष न होनेसे समुच्चय पक्ष ही श्रेष्ठ है । समुच्चय दो प्रकारका होता है एक तो समप्रधान (दोनोंही तुल्यप्रधान) भावसे, जैसे "दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत । " यहां पर 'दर्श' और 'पौर्णमास' दोनोंही प्रधान हैं । वैसे ही पुराण वाक्य और स्मृति वाक्य दोनोंही मुख्यप्रधान साधन हैं और दूसरा समुच्चय अङ्गांगी भावसे होता है जैसे ' दर्शपौर्णमास ' अंगी हैं ' प्रयाज'

'अनुयाज' अङ्ग है वैसे ही यहांपर स्मृतिविहित व्रतादि अङ्गी और पुराणविहित नामकीर्तन अंग है। यदि कोई यह कहे कि नामकीर्तन अङ्गी और स्मृतिविहित व्रतादि अङ्ग क्यों नहीं हो सकते? तो इसके उत्तरमें पुराण वचनोंहीसे यह दिखलाया जाता है कि नामकीर्तन अंग है और स्मृतिविहित व्रतादि कर्मरूप प्रायश्चित्त अंगी हैं। भागवतमें कहा है—

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥

'हे राजेन्द्र! जैसे मदिराके घड़ेको नदियां पवित्र नहीं करतीं वैसेही नारायणसे विमुख पुरुषको भी उसके किये हुए प्रायश्चित्त पवित्र नहीं करते' इससे यह प्रतीत होता है कि 'भगवद्भजन' प्रायश्चित्तका अंग है। इस वचनका यह अर्थ नहीं है कि प्रायश्चित्त पवित्र नहीं करते। ऐसा मान लेनेपर तो स्मृति वचनोंका विरोध और "नारायण पराङ्मुखम्" विशेषण व्यर्थ होता है। मतलब यह है, किये हुए प्रायश्चित्त पवित्र तो करते हैं परन्तु नारायण पराङ्मुखको नहीं करते, नारायण परायण को करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पवित्र तो प्रायश्चित्त ही करते हैं! नारायण-परायणता तो उसका एक अङ्ग है। भागवतमें और भी कहा है—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसङ्कीर्तनं हरेः ॥

"मन्त्र, तन्त्र, देशकाल, और पवित्रता आदिसे न्यून (अपूर्ण) कर्मको हरिनाम सङ्कीर्तन पूर्ण कर देता है।" इस वचनसे भी नामकीर्तन कर्मोंके साद्गुण्य और उनकी पूर्तिके लिये ही किया जाना सिद्ध होता है। स्कन्दपुराणमें कहा है—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

"जिसके स्मरण और नामकीर्तनसे तप-यज्ञादि कर्मोंकी न्यूनता उसी क्षण पूर्ण होजाती है उस अच्युत को मैं नमस्कार करता हूँ।" इसीप्रकार विष्णुपुराणके वचन हैं,

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥

इससे भी 'हरिस्मरण' कर्मोंका अंग ही प्रतीत होता है, यदि स्मरणकी स्वतन्त्रता विवक्षित होती तो "जप होमार्चनादिषु" क्यों कहते? अतएव यह सिद्ध होता है कि नामकीर्तन और स्मरण आदि सब कर्मोंके अङ्ग हैं। सब कर्मोंमें प्रायश्चित्त भी आ जाता है अतएव नामकीर्तन प्रायश्चित्तका भी अंग है। यहां तक पूर्वपक्ष है। अब निर्णयात्मक उत्तरपक्षका आरंभ होता है! श्रीहरि नाम स्वप्रधान ही पाप नाशका हेतु है। भागवतमेंही लिखा है:—

कर्मणा कर्मनिर्हारो नह्यात्यन्तिक इष्यते ।
अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तविमर्शनम् ॥

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध षष्ठ १.११)

प्रायश्चित्त कर्मसे पापकर्मका आत्यन्तिक नाश नहीं होता क्योंकि पापका नाश होनेपर भी पापवासना तो बनी ही रहती है, पुरुष फिर भी पापमें प्रवृत्त होते हैं ऐसा देखनेमें आता है। यदि पापवासना नष्ट हो जाती तो पुनः पापमें प्रवृत्ति न होती। पुनः पापमें प्रवृत्ति होती है तत्त्वज्ञानके अभावसे, इसलिये प्रायश्चित्त विमर्शन (ब्रह्मविद्या) है। इस प्रकार कर्मात्मक प्रायश्चित्तकी निन्दा करके फिर कहते हैं—

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥

(श्रीमद्भागवत ६। १। १५)

"जैसे सूर्य अन्धकारका नाश कर देता है इसी प्रकार वासुदेवपरायण पुरुष केवल भक्तिसे पापका नाश कर देते हैं। यहां ब्रह्मविद्याकी समानता दिखलाकर केवल कीर्तनादि लक्षणा भगवद्भक्तिको ही परम प्रायश्चित्त सिद्ध किया है। इसीप्रकार पूर्वोक्त षष्ठ स्कन्धके अध्याय २के श्लोक ८-१०तथा अध्याय ३के श्लोक-२३, २४ से भी यही सिद्ध होता है कि

केवल हरिकीर्तन ही सर्वपापोंके नाशका परम साधन है। श्रीनृसिंहपुराणका वचन है :—

इत्युदीरितमाकर्ण्य कृष्णवाक्यं यमेरितम् ।
नारकाः कृष्ण कृष्णेति श्रीनृसिंहेति चुक्रुशुः ॥

इस श्लोकसे आरम्भ करके आगे तक केवल कीर्तन मात्रसे ही नरकमें पड़े हुए प्राणियोंको बैकुण्ठप्राप्ति होनेका वर्णन है। स्कन्धपुराणमें कहा है—

हरहरहरशब्दमादितो वै, मुहुरभिधाय मुनीन्द्रवर्य-वृन्दः। अपठदखिलमेघघोषतुल्यं सकलहिताय नमः शिवाय शब्दम् ॥

मुनियोंके समूहने सबके हितके लिये मेघकी भांति गरज कर 'हरहरहर' कहते हुए नमःशिवाय शब्द पढ़ा, जिसके श्रवणमात्रसे ही नारकी पुरुषोंको शिवलोककी प्राप्ति हो गयी। श्रीविष्णुधर्ममें स्पष्टरूपसे इसको निरपेक्ष साधन बतलाया है।

अथ पातकभीतस्त्वं सर्वभावेन भारत ।
विमुक्तान्यसमारम्भो नारायणपरो भव ॥

'हे भारत! यदि तुझे पापका भय है तो सर्व कर्मोंको त्यागकर नारायण-परायण हो जा! यह भी कहा है:—

गोविन्देति समुच्चार्य पदं क्षपितकिल्विषः ।
क्षत्रबन्धुर्विशुद्धात्मा गोविन्दत्वमुपेयिवान् ॥

इस प्रकार प्रायश्चित्तसे विमुख होने पर भी क्षत्रबन्धुको केवल कीर्तन मात्रसे ही गोविन्दकी प्राप्ति होना बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि केवल हरिकीर्तन ही सर्व पापक्षयका साधन है। किसी कर्म विशेषका अङ्ग तो होना दूर रहा, परन्तु इसमें किसी अन्यके समुच्चय की भी कोई अपेक्षा नहीं है।

पूर्वपक्षमें यह कहा गया है कि हरिकीर्तन प्रायश्चित्तका अङ्ग है ऐसा पुराण-वचनोंसे प्रतीत होता है सो ठीक नहीं है। क्योंकि 'प्रायश्चित्तानि चीर्णानि' श्लोक (देखो पृष्ठ १४) का यह अर्थ है कि प्रायश्चित्त सम्यक्-रूपसे पवित्र नहीं कर सकते! (न निष्पुनन्ति—सम्यक् न पुनन्ति) पवित्रताकी सम्यक्ता है वासनाका क्षय वह कदापि कर्मसाध्य नहीं है। वहां अधिकारी है "नारायण—पराङ्मुख"। अतएव उसकी वासनाका क्षय कर्म कैसे कर सकते हैं? वह तो भक्ति और ज्ञानसे ही संभव है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रायश्चित्त पाप क्षय तो कर सकते हैं परन्तु वासना का क्षय नहीं कर सकते! ऐसा अर्थ करनेसे मनु आदिके वचनोंका भी विरोध नहीं होता और "नारायण—पराङ्मुख" विशेषण भी व्यर्थ नहीं जाता। क्योंकि यह तो हेतुरूपसे कहा गया है। "कर्मणाकर्म निर्हारो" इत्यादि श्लोकमें भी इसीका स्पष्टीकरण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कर्मसे कर्मका नाशही नहीं होता परन्तु यह अर्थ है कि उसका आत्यन्तिक नाश नहीं होता। नाशका आत्यन्तिकत्व है "वासना सहित नाश होनेमें"। "अविद्वदधिकारित्वात्" वचनसे भी यही अर्थ स्पष्ट होता है अविद्वान् (भगवत्-पराङ्मुख) का प्रायश्चित्तोंमें अधिकार होनेसे विमर्शन ब्रह्मविद्याका दृष्टान्त दिया गया है। (विधान नहीं, क्योंकि प्रकरण भक्तिका है ब्रह्मविद्याका नहीं है।

क्वचिन्निवर्त्ततेऽभद्रात् क्वचिच्चरति तत्पुनः ।
प्रायश्चित्तमतो पार्थ मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥

कभी प्रायश्चित्त करता है, कभी फिर पाप करता है, इस हेतुसे मैं हाथीके स्नानकी तरह प्रायश्चित्तको व्यर्थ समझता हूं। हाथी नहा कर ज्योंही बाहर निकलता है त्यों ही फिर सूंडसे धूल उछाल कर अपने ऊपर डाल लेता है; इसी प्रकार पाप—वासनायुक्त पुरुष भी प्रायश्चित्तके बाद फिर भी पापमें लग जाता है जबतक पापवासना रहती है तब तक पापमें प्रवृत्त होना अनिवार्य है।

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानव्रतादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रि सेवया ॥

(श्रीमद्भागवत ६ । २ १७)

यह वचन भी इसी अर्थमें सहायक है। "जिस जिस निमित्तसे जो जो तप, दान, व्रत किये जाते हैं उनसे वही पाप नष्ट होते हैं। पाप-संस्कारयुक्त हृदय पवित्र नहीं होता, वह तो भगवत्की चरण सेवासे ही पवित्र होता है। यहां 'सेवा' शब्दसे पादसेवनरूपी भक्ति विवक्षित नहीं है परन्तु कीर्तनका प्रकरण होनेसे कीर्तनरूपी भक्ति ही विवक्षित है। सेवा, भजन, भक्ति पर्याय शब्द हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भागवत)

इन नौ प्रकारकी भक्तिमेंसे प्रत्येक भक्तिही सर्वपापोंके नाशका साधन है। पुराणोंमें इस अर्थके बोधक अनेक वचन हैं। यहां प्रकरणकी समाप्ति पर्यन्त इतिहास सहित कीर्तनका ही प्रतिपादन करना है इसलिये यहां केवल कीर्तन लक्षणाभक्ति ही विवक्षित है 'केवलया भक्त्या' सामान्यरूपसे ऐसा आरम्भ होनेके कारण इसको नवविधा भक्तिका प्रकरण भी कह सकते हैं। "सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुण रागियैरिह। न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् स्वप्नेविपश्यन्ति हि चार्ण निष्कृताः॥ इस श्लोकमें स्मरणका। "तदपीशाङ्घ्रिसेवया" इसमें पादसेवनका "कृष्णार्पितः प्राणस्तत्पूरुषनिषेवया" इसमें भी पादसेवन या भगवज्जन सेवाका कथन है। "तथा जिह्वा न वक्ति" इत्यादि (६।३।२९) यह यम वचनतो स्पष्ट ही नवविधा भक्तिका सूचक है। अस्तु!

उपर्युक्त विवेचनसे भक्ति और कर्मके 'समुच्चय' का तो निरास (खण्डन) हो गया। अब विकल्प और 'व्यवस्था' पर विचार किया जाता है। 'व्यवस्था' करनेपर अधिकारी का कोई विशेषण भी कहना चाहिये। जैसे कर्मके अधिकारीका विशेषण मलिनान्तःकरण और ज्ञानके अधिकारीका विशेषण शुद्धान्तःकरण है। ऐसी दशामें श्रद्धाभक्ति आदि विशेषण कहने होंगे। इससे श्रद्धाभक्ति समन्वित कीर्तन ही पाप नाशका साधन सिद्ध होगा। 'विकल्प' पक्षमें श्रद्धादि विशेषणकी आवश्यकता नहीं है इससे श्रद्धादि रहित कीर्तन भी पापनाशक सिद्ध होता है ऐसा होनेपर गुरु लघु (बड़े छोटे) के विकल्पमें गुरु (बड़े) का अत्यन्त बाध होता है। लघु (छोटे) साधन कीर्तनको छोड़कर गुरु साधन द्वादशाब्दादि व्रत (बारह वर्षोंके व्रत) में कोई भी प्रवृत्त नहीं होगा। इससे स्मृतियां अप्रमाण हो जायेंगी। यदि दोनों साधन समान हों, किसीमें कोई विशेषता न हो तो इच्छानुसार जिसको जो अच्छा लगे वह उसी एक साधनमें लग जाता है, कोई पहलेमें लगता है तो कोई दूसरेमें। इससे दोनोंका ही पाक्षिक अनुष्ठान सिद्ध हो जाता है परन्तु यहां तो एक दूसरे साधनमें सुकरत्व (सहज) और दुष्करत्व (कठिन) का बड़ा भेद है। कीर्तन बड़ा सहज है और द्वादशाब्दादि बड़ा कठिन है। ऐसी अवस्थामें सहजसाधन कीर्तनको छोड़कर कोई भी पुरुष अत्यन्त दुष्कर द्वादशाब्दादि व्रतों में प्रवृत्त नहीं होगा। इससे धर्मशास्त्रका अत्यन्त बाध हो जायगा। इसलिए व्यवस्था पक्ष ही श्रेष्ठ है; इस 'व्यवस्था' पक्षमें जैसे कर्मयोग और ज्ञानयोगमें मलिन अन्तःकरण और शुद्ध अन्तःकरण अधिकारीके विशेषण हैं इसीप्रकार यहां अधिकारीका विशेषण श्रद्धा है। जिसकी पुराणोंमें श्रद्धा है वह भक्तिका अधिकारी है और जिसको स्मृतियोंमें श्रद्धा है वह द्वादशाब्दादिका अधिकारी है। भगवान् नारदका वचन प्रमाण है :—

यस्ययावांश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिश्च तावती।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

यदृच्छया मत्कथादौ जातः श्रद्धश्च यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसिद्धो भक्तियोगस्य सिद्धिदः॥
तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धायावन्नजायते॥

इस प्रकार जिनकी पुराणोंमें श्रद्धा है उनका भक्तियोगमें अधिकार और कर्मयोगमें निवृत्त होना बतलाया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(४-४०)

-श्रद्धाहीनका सर्वत्र अनधिकार दिखलाया गया है।

शिवधर्मोत्तरमें कहा है—

विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादः शिवात्मकः ।
लोकानुग्रहकर्त्ता यः स मृषार्थः कथं वदेत् ॥

यह वचन गुणवाद निराकरणसे शैवशास्त्रोंमें श्रद्धावानका ही अधिकार दिखलाता है। "श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः" यह श्रुति कर्मकाण्डमें और "श्रद्धान्वितो भूत्वात्मन्यात्मानं पश्येत" यह श्रुति ज्ञानकाण्डमें श्रद्धावानका ही अधिकार बतलाती है। इसलिये सर्वत्र श्रद्धावानका ही अधिकार सिद्ध होता है। और वह श्रद्धा पुरुषभेदसे विषयभेदोंमें व्यवस्थित है। सुतराम् व्यवस्थापक्ष ही श्रेष्ठ है। युक्त भी यही है। अधिकार शब्दका अर्थ है विधिपुरुष सम्बन्ध या उसका हेतु 'यह मीमांसकोंकी मर्यादा है। कल्याणका साधन है 'विधि' उसका पुरुषके साथ सम्बन्ध है। "स्वसाध्यभोक्तृत्व" (स्व शब्दसे विधि, उसका साध्य स्वर्ग और उसका भोक्तृत्व पुरुषमें है) इसी तरह नित्यकर्मके विषयमें जीवनकामादि सम्बन्ध है यह सब श्रद्धाके बिना नहीं बन सकता। अनावगताप्रभाव (जिसको यथार्थ वक्ता न समझता हो) पुरुषका वचन कल्याणमें प्रवृत्त करनेवाला, और दोषरहित होनेपर भी कोई भी मनुष्य न तो यह समझता है कि इससे मेरा मनोरथ पूर्ण होगा और न उसके बतलाये हुए कर्ममें ही कोई लगता है।

(शंका) जिस पुरुषको वेद और वेदमूलक स्मृति पुराणादि सभी शास्त्रोंके प्रमाण होनेका सन्देहरहित ज्ञान है यदि वही शास्त्रमें अधिकारी है तो फिर शास्त्रके किसी एक देशमें अश्रद्धा रखनेवाला दूसरे एकदेशमें भी अधिकारी कैसे हो सकता है? उसकी वह एकदेशीय श्रद्धा "प्रमाणान्तरसंवाद-निमित्ता" (शास्त्रोक्त अर्थमें कोई दूसरा भी प्रमाण मिलता हो।) है या "स्वतः प्रामाण्यनिबन्धना"? इन दोनोंमें पहला पक्ष तो उचित नहीं क्योंकि अत्यन्त गहन धर्मतत्त्वके विषयमें शास्त्रके अतिरिक्त दूसरा कोई प्रमाण ही नहीं है। दूसरे पक्षमें शास्त्रका स्वतः प्रामाण्य जैसा एक देशमें है वैसा ही दूसरे एकदेशमें है। इससे तो सर्वत्र श्रद्धा होनी चाहिये। या सर्वत्र ही अश्रद्धा होनी चाहिये। यदि ऐसा है तो फिर 'श्रद्धानिबन्धना' व्यवस्था भी कैसे हो सकती है? (उत्तर) यह शङ्का ठीक नहीं क्योंकि वेदके कर्मकाण्ड भाग और उपनिषद्भाग दोनोंके तुल्यप्रमाण होनेपर भी श्रद्धाकी व्यवस्था देखी जाती है। जो पुरुष आत्माको अकर्ता अभोक्ता बतलानेवाले उपनिषदोंमें श्रद्धा नहीं रखता, वही कर्मविधिका अधिकारी होता है, दूसरा नहीं होता। अन्यथा सबको सबमें अधिकार होना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यहां भी आप्तवचन होनेसे एक तराजू पर तुले हुए समानगौरववाले होनेपर भी सर्वशास्त्रोंमें किसी पुरुषकी किसी प्रतिबन्धकसे, अदृष्टसे, उदाहरणाभास (विषम दृष्टान्त) के दर्शनसे, अर्थान्तर परत्व (इसका अर्थ कुछ और ही है) शंकाकलंकसे किसी एक विषयमें श्रद्धा कुण्ठित होजाती है; इसलिये श्रद्धानिबन्धना व्यवस्था ही युक्त है * ॥ २५ ॥

यमराज कहते हैं कि ऐसा विचारकर जो सब बुद्धिमान् पुरुष एकाग्र मनसे अनन्त गुण भगवान्में परम प्रेम होनेके प्रधान साधन नामकीर्तनमें लग जाते हैं वे कभी मेरे दण्डके योग्य नहीं हैं। क्योंकि

* इस श्लोकको व्याख्यामें अधिक भाग "श्रीभगवन्नामकौमुदी" से लिया गया है। यद्यपि यह सब बिलकुल ठीक है तथापि लोकसंग्रहार्थ स्मृतिविहित प्रायश्चित्त भी अवश्य कर्तव्य है। अन्यथा नास्तिक पुरुषोंको पाप करनेमें बहाना मिल सकता है। —लेखक

श्रीभगवन्नामकौमुदी नामक संस्कृतकी अति प्राचीन हस्तालिखित पुस्तक अभी श्रीयुत गौरीशंकरजी गोयन्दकाने शुद्ध करवा कर श्रीअच्युत ग्रन्थमालाके प्रथम पुष्पके तौर पर काशीसे प्रकाशित की है। हरिनाम प्रेमी संस्कृत जाननेवाले लोगोंके लिये यह बड़ा ही उपयोगी ग्रन्थ है, ज्ञानवापी काशीसे, संभवतः प्रकाशकके पास पुस्तक मिल सकती है। —सम्पादक

उनकी पापमें तो कभी प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती यदि कभी प्रमादसे कोई पाप होता है भी, तो वह वर्णित माहात्म्य भगवान्‌के नामकीर्तनसे तत्क्षण नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥ जो पुरुष भगवान्‌के शरणागत और समदर्शी साधु हैं, देवता और सिद्धगण भी जिनकी पवित्र कथाका गान किया करते हैं। भगवान्‌की गदा सर्वदा सर्वतोभावसे उनकी रक्षा किया करती है अतएव ऐसे साधु पुरुषोंके समीप तुमलोग कभी मत जाना क्योंकि उनको दण्ड देनेके लिये हम या हमारा नियन्ता काल कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥ इसके ज्ञाता अकिञ्चन परमहंस समूहोंसे सेवित मुकुन्दके चरणारविन्द—मकरन्दरसके आस्वादनसे विमुख होकर जो लोग नरकके द्वारभूत गृहमें ही सदा तृष्णायुक्त हैं तुम लोग उन्हीं पापियोंको मेरे पास लाया करो ॥ २८ ॥ जिनकी जिह्वा एकबार भी भगवान्‌के नामका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त एकबार भी हरिके चरणारविन्दका स्मरण नहीं करता, जिनका मस्तक एकबार भी श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें नमस्कार नहीं करता, अथवा जिन्होंने कभी भगवान्‌का भजन नहीं किया, उन सब पापियोंको ही यहां लाया करो ॥ २९ ॥ अपने दूतोंसे इतना कहकर यमराज भगवान्‌से क्षमा मांगते हुए कहने लगे—हम अज्ञानी उसके दासोंने जो यह अन्याय किया है, उसे पुराण पुरुष भगवान् नारायण क्षमा करें। हम हाथ जोड़कर क्षमा मांगते हैं। उस गुरुओंके गुरुमें क्षमा ही युक्त है। उस भूमा पुरुषको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे कौरव्य ! जब यमने भी ऐसा कहा है तब तुम यह निश्चय समझो कि भगवान् विष्णुका नाम-कीर्तन मूल सहित महापापोंका ऐकान्तिक प्रायश्चित्त है और प्राणियोंका मङ्गल पुरुषार्थ चतुष्टय—अर्थ, धर्म, काम, मोक्षका देनेवाला है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उद्दाम (पापनाशादिमें विश्रृङ्खल) हरिके सुन्दर वीर्योंको वारम्बार श्रवण कीर्तन करनेवाले पुरुषोंका अन्तःकरण उसमें अनायास उत्पन्न हुई भक्तिसे जैसा निर्वासन शुद्ध होता है वैसा व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे कभी नहीं होता क्योंकि उनमें वासना शेष रह ही जाती है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष श्रीकृष्णके चरणारविन्द—मकरन्दका रस जानता है वह फिर नरकप्रद मायिक विषयोंमें कभी रमण नहीं करता। सेवासुखसे अनभिज्ञ व्यक्ति ही कामाभिभूत होकर पाप नाशके लिये कर्मरूप प्रायश्चित्त करता है। इसी लिये सत्त्वशुद्धिके अभावसे वह फिर भी पापोंमें प्रवृत्त होता है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अपने स्वामी यमराजके द्वारा सुने हुए भगवान्‌के माहात्म्यको स्मरण करके यमदूत अच्युताश्रय (भगवान्‌के आश्रित व्यक्तियोंसे सर्वदा शङ्कित रहते हुए उनकी ओर देखते ही डर जाते हैं ॥ ३४ ॥ यह इतिहास मलयपर्वत पर श्रीहरिकी पूजा करते हुए भगवान् अगस्त्यने वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीने विष्णुसहस्रनामके भाष्यमें नाम-माहात्म्य सूचक अनेक पुराणोंके श्लोक उद्धृत किये हैं। उनमेंसे कुछ श्लोक अर्थ सहित यहां लिखे जाते हैं।

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥ १ ॥
जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ २॥
रूपमारोग्यमर्थांश्च भोगांश्चैवानुषङ्गिकान् ।
ददाति ध्यायतो नित्यमपवर्गप्रदो हरिः ॥ ३ ॥
चिन्त्यमानः समस्तानां क्लेशानां हानिदो हरिः ।
समुत्सृज्याखिलं चान्यं सोऽच्युतः किं न चिन्त्यते४
ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु ।
प्रायश्चित्तं हि सर्वस्य दुष्कृतस्येति वै श्रुतिः ॥ ५ ॥
अति पातकयुक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् ।
भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावन पावनः ॥ ६ ॥
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥७॥

यन्नामकीर्त्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥ ८ ॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥ ९ ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात् ।
तत्सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा ॥१०॥
यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं,
स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो,
ब्राह्मोऽपि लोकोल्पकः ॥ ११ ॥
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां,
पुंसां ददात्यव्ययः ।
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं,
तत्राच्युते कीर्तिते ॥ १२ ॥

"सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे, द्वापरमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशवके कीर्तनसे प्राप्त होता है ॥ १ ॥ (यह विष्णु-पुराणका वचन है) और कुछ करे या न करे, ब्राह्मण केवल जपसे ही सिद्ध हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, सबसे मैत्री करनेवालेको ब्राह्मण कहते हैं ॥ २ ॥ मोक्षका दाता हरि ध्यान करनेवाले पुरुषको रूप, आरोग्य, धन और नानाप्रकारके भोग भी विना ही माँगे दे देता है ॥ ३ ॥ चिन्तन किया हुआ जो हरि सब क्लेशोंकी हानिका करनेवाला है, अन्य सब साधनोंका त्याग करके उस हरिका ही चिन्तन क्यों न किया जाय ? ॥ ४ ॥ स्नानादि कर्मोंको करते समय नारायणदेवका ध्यान करे। यही सब पापोंका प्रायश्चित्त है यह श्रुति है ॥ ५ ॥ महापापोंसे युक्त मनुष्य भी यदि निमिषभर अच्युत प्रभुका ध्यान करे तो वह पंक्तियोंके पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करनेवाला बड़ा तपस्वी बन जाता है ॥ ६ ॥ समस्त शास्त्रोंका मथन करके और बार बार विचार करके यही सिद्धान्त स्थिर किया गया कि सदा नारायणका ध्यान करना चाहिये ॥ ७ ॥ हे मैत्रेय ! जैसे अग्नि धातुओंके मलको दग्ध कर देता है वैसे ही हरिका नाम-कीर्तन सब पापोंको दग्ध कर देता है ॥ ८ ॥ जैसे अनिच्छासे स्पर्श किया हुआ भी अग्नि स्पर्श करनेवालेको जला देता है। वैसे ही दुष्ट पुरुषोंसे भी स्मरण किया हुआ हरि उनके पापोंको हर लेता है ॥ ९ ॥ ज्ञानसे हो या अज्ञानसे, वासुदेवके कीर्तनसे सर्व पाप उसी प्रकार लीन हो जाते हैं जिस प्रकार जलमें डालते ही लवण लीन हो जाता है ॥ १० ॥

जिस कृष्णमें बुद्धि लगजानेसे पुरुष नरकको नहीं प्राप्त होता। स्वर्ग भी उसके चिन्तनमें विघ्न है कृष्णमें जिसका मन निविष्ट है उसके लिये ब्रह्माकी पदवी भी अल्प है। जो अव्यय शुद्ध बुद्धि पुरुषोंके चित्तमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति देता है उस अच्युतका कीर्तन करने पर यदि पाप नष्ट हो जायँ तो इसमें चित्र (आश्चर्य) ही क्या है? इस श्लोकके नरक शब्दका अर्थ पापका फल रौरवादि नहीं है। क्योंकि कैमुत्यन्यायसे पापके नाशमें आश्चर्यका अभाव बोधन किया है सो इस अर्थमें नहीं बन सकता किन्तु 'नराणाम् कं सुखम् नरकम्' इस षष्ठीसमाससे बृहदारण्यकोक्त मानुषानन्द (चक्रवर्तित्व) अर्थ लेनेसे चित्र हो सकता है। तात्पर्य यह है कि जिसका कीर्तन करनेवालोंको मानुषानन्द तो विघ्नरूपमें भी नहीं प्राप्त होता, वह तो दूसरे दूसरे देवताओंके भक्तोंको मिला करता है। स्वर्ग भी उसके चिन्तनमें विघ्न है। द्विपरार्ध-स्थायी हिरण्यगर्भ लोक भी अल्प है, हरिके चरणनख स्मरणके विसदृश फल है। चक्रवर्तीको प्रसन्न करके केवल पेट भर कचौरियाँ खानेके समान है। वह तो स्मरण करनेवाले पुरुषोंको मुक्ति (प्रपञ्चसहित अविद्याके नाश द्वारा निरतिशयानन्द स्व स्वरूपमें स्थिति) देता है क्योंकि वह अमलधी है। अन्यान्य समलधियोंकी तरह उनको देशकाल परिच्छिन्न फल नहीं देता। बुद्धिकी अमलता यही है कि वह हरिके चरणकमलमें प्रवेश कर जाय। विषयोंमें प्रवेश करनेसे ही बुद्धि समल हुआ करती है। जिनका चित्त हरिके चरणोंमें प्रविष्ट है उनको वह तो त्रिविध परिच्छेद रहित मुक्ति ही देता है। परिच्छिन्न फल नहीं देता। इतर-दानी तब दान देते हैं जब कि याचक उनके-

चित्तमें स्थित होता है। परन्तु यह तो याचकोंके ही चित्तमें स्थित होकर उनको मुक्ति देता है। अन्य दाता प्रति याचकको थोड़ा थोड़ा धन देनेपर भी सव्यय हो जाते हैं परन्तु यह प्रति याचकको सर्वस्व देता हुआ भी अव्यय ही बना रहता है। मनोमात्रसे ही सम्मुख आये हुए पुरुषोंको जो हरि सर्वानर्थ निवृत्ति और निरतिशयार्थ प्राप्तिरूप मुक्ति देता है वह यदि उन पुरुषोंके कि जो बाहरकी इन्द्रिय वाणी और भीतरकी इन्द्रिय मनको सर्वथा उसीके अर्पण कर देते हैं सर्व पापोंका नाश कर देता है तो इसमें क्या आश्चर्य है? ॥११॥ ॥१२॥

यह है श्रीहरिनामकी कुछ महिमा!

राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम, राम राम राम राम राम
सन्तोंके जीवन ध्रुव-तारे,
भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे,
विश्वम्भर सब जग रखवारे,
सब विधिपूरण काम ॥ राम राम०
अजामील दुख टारन हारे,
गज गणिकाके तारन हारे,
द्रुपद-सुता भय वारन हारे,
सुखमय मङ्गलधाम ॥ राम राम०
अनल अनिल जल रवि शशि तारे,
पृथ्वी गगन गन्ध रस सारे,
तुझ सरिताके सब फव्वारे,
तू सबका विश्राम ॥ राम राम०
तुझ पर-धन-जन-तन मन वारे,
तुझ प्रेमामृत-मद मतवारे,
धन्य धन्य! वे जग उजियारे,
जिनके मुख यह नाम ॥ राम राम०

श्रीनाम-संकीर्तन।
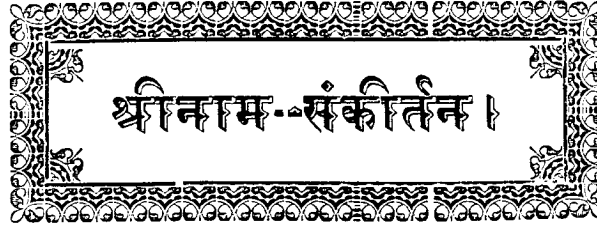
(लेखक—श्रीआचार्य मदनमोहनजी गोस्वामी, भागवतरत्न, वृन्दावन।)

कलियुगमें नाम-कीर्तनसे ही जीवका कल्याण हो सकता है। ऐसा सरल अन्य उपाय नहीं है। इसीसे कहा है कि-

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" ॥

इससे सिद्ध होता है कि श्रीकृष्णनाम-कीर्तनसे बढ़कर पापोंको दूर करनेवाला अन्य उपाय नहीं है। यह बात शास्त्रसिद्ध है, यथा-

"नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम् ॥

अर्थ यह है कि, जो विषयमें अन्धे हो रहे हैं, जो मायाके जालमें फंसे हुए हैं ऐसे जीवोंके लिये एक मात्र हरिनाम-कीर्तन ही सहायक है, जो सब पापोंको नष्ट कर देता है। पद्मपुराणमें भी लिखा है-यथा-

"कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये ॥
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम ॥"

तात्पर्य यह है कि अपरिमेय प्रभावशाली श्रीकृष्ण या श्रीविष्णुके नाम कीर्तनसे मनुष्यके सब पाप दूर होते हैं। जैसे सूर्यके उदयसे अन्धकार दूर हो जाता है। हे द्विजोत्तम! मनुष्यमात्रको आनन्ददायक, संपूर्ण पापोंका विनाशक हरिकीर्तनको छोड़कर कलियुगमें दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। अतएव नामकी महिमा विचित्र है। नाम कीर्तन करनेवालोंकी विचित्र अवस्था होती है। इसका लक्षण श्रीभागवतमें वर्णित है।

यथा—

"एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या,
जातानुरागो द्रुतचित्तउच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः" ॥

ऋषभनन्दन कवि जनक राजासे कहते हैं कि, जो मनुष्य हरिके नाम-कीर्तनको ही अपने संपूर्ण जीवनका प्रधान उद्देश्य बना लेता है उसके हृदयमें अनुराग उत्पन्न होता है, वह हृदय द्रवीभूत हो जाता है, वह कभी हंसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी नाचता है, उसको बाह्यज्ञान नहीं रहता। वह अपने प्रभुके प्रेममें पागल रहता है।

यह नाम-संकीर्तन संसार-सागरसे पार करनेमें नौकारूप है।

"तरणिरिव तिमिरजलधेर्जयति जगन्मंगलं हरेर्नाम" ॥

श्रीकृष्णनाम कीर्तनकी महिमा श्रीगौराङ्गप्रभुने स्वयं श्रीमुखसे वर्णन की है।

"चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणम्।
श्रेयः कैरवचंद्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम् ॥
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण-संकीर्तनम् ॥

श्रीकृष्ण-कीर्तनसे चित्तरूपी दर्पण निर्मल हो जाता है। अर्थात् चित्तके समस्त कलंक दूर हो जाते हैं और विषय वासनाओंकी महादावाग्निके संतापको कृष्ण कीर्तन शीतल कर देता है। जिस तरह चन्द्रके उदयसे कुमुदिनीका फूल विकसित हो जाता है तद्वत् कृष्णकीर्तनसे आत्माका पुण्य विकसित हो जाता है। हरिकीर्तनसे भक्ति विद्यारूप

विधुका उदय होता है, अतएव भक्ति विद्याका जीवन दाता है। आनन्द समुद्रका बढ़ानेवाला है। प्रत्येक पद पदमें पूर्णामृतका स्वाद देनेवाला है। अर्थात् प्रत्येक वर्ण अमृत-मय सुखसे परिपूर्ण है। समस्त जगत्‌की आत्माको नाम–प्रेममें डुबानेवाला श्रीकृष्ण–कीर्तन सर्वोत्कर्षसे विराजता है। जब मनुष्य हरिकीर्तन करने लगता है उस समय उसके भावोंका परिवर्तन होता है, जैसा कि श्रीचैतन्यदेवने लिखा है—

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेय कीर्तनीयः सदाहरिः॥

अपने को तृणसे भी अधिक नम्र मानता है। बृक्षसे भी अधिक सहनशील हो जाता है तिरस्कार करनेवालेका सम्मान करता है और सर्वदा हरिकीर्तनमें निमग्न रहता है।

जो लोग परिहासपूर्वक भी नामकीर्तन करते हैं उनका भी उद्धार हो जाता है।

"सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाः॥ "

किसी संकेतसे या परिहाससे या जानकर अथवा अव-ज्ञासे नामकीर्तन करता है वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कहांतक विचित्रता वर्णन करें।

ठोकर खाकर गिरता हुआ, ज्वरादि पीड़ासे पीड़ित होकर भी यदि नाम कीर्तन करता हो तो वह पुरुष भी समस्त यातनाओंसे मुक्त हो सकता है।

नामकीर्तनका सिद्धान्त यदि जानना चाहते हैं तो श्रीचैतन्यदेवके प्रिय ठाकुर हरिदासजीने जो सिद्धान्त स्थिर किया है उसको स्मरण रखना चाहिये। एक दिन हरिदास-जी पण्डित मण्डलीके साथ नामकीर्तनके तत्त्व सम्बन्धमें आलोचना कर रहे थे उस समय नामकीर्तनके अनेक प्रकारके सिद्धान्तको सुनकर वे बोले कि यद्यपि नामकीर्तन-से पापका नाश और मोक्षकी प्राप्ति सिद्ध है, परंतु मैं इनको मुख्य नहीं मानता किन्तु गौण मानता हूं। नाम-कीर्तनसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होना मुख्य समझता हूँ।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है—

"नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय"

पापका क्षय मोक्ष प्राप्ति आनुषङ्गिक फल है। जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकारका नाश होता है साथ ही सारे पदार्थ भी दीखने लगते हैं, इसी तरह नामकीर्तनसे श्रीकृष्ण–चरण प्राप्ति मुख्य है, पापक्षय और मोक्ष आनु-सङ्गिक फल है। इस सिद्धान्तको सर्वदा सबको स्मरण रखना चाहिये।

उपसंहारमें इतना निवेदन अवश्य करूंगा कि नाम-कीर्तनके समय जब सात्त्विक भाव उत्पन्न होंगे तभी उत्कंठा होगी जब उत्कण्ठा होगी उसी समय नामकीर्तनका आनंद मिलेगा। इतने पर भी यदि नाम–कीर्तन न करे तो उसको दुर्दैवही मानना चाहिये।
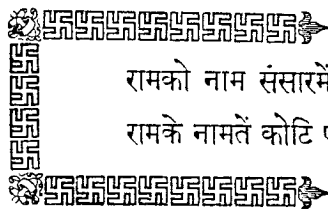
रामको नाम संसारमें सार है, रामको नाम है अमर वानी।
रामके नामतें कोटि पातक टरें, रामको नाम विश्वास मानी।
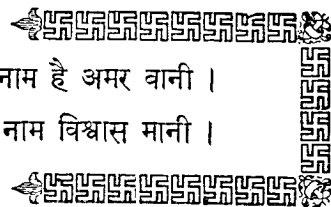
" नाम-युग "

(लेखक—आचार्य श्रीकृष्ण चैतन्य गोस्वामी, वृन्दावन धाम)

इस कलियुगको नामयुग भी कहते हैं। क्योंकि इस युगका साधन केवल नामसंकीर्तनही है। केवल हरिनामसंकीर्तनके द्वारा ही इस युगमें श्रीभगवान्‌के अभय चरणोंकी प्राप्ति हो सकती है। इस युगमें नामसंकीर्तनके सिवा और कोई साधन नहीं है।

सत्ययुगमें कठोर तप या ध्यानमें जो शक्ति थी, त्रेतायुगमें बड़े बड़े यज्ञोंमें जो शक्ति थी और द्वापरयुगमें पूजन अर्चनामें जो शक्ति थी, कलियुगमें वह सब शक्ति भगवन्नाम–संकीर्तनमें समाविष्ट है।

उच्चस्वरसे हरिनामसंकीर्तन करनेवाले मनुष्यको अभ्याससे वह फल प्राप्त होता है जो फल कठोर ध्यान, यज्ञानुष्ठान, और अर्चना आदि करनेवालोंको भी कठिनतासे प्राप्त होता था।

यद्यपि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, इन तीनों युगोंसे कलियुग दोषयुक्त और अनीतियुक्त माना गया है तथापि–

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

कलियुगमें एक महान् गुण यही है कि केवल नामसंकीर्तनसे जीव बन्धनमुक्त होकर श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌के पादपद्म प्राप्त कर सकता है।

महाभारतमें लिखा है, एक समय मुनिगणोंमें इस विषयपर बड़ा विवाद हुआ कि सबसे उत्तम युग कौनसा है जिस युगमें अल्प मात्र साधनसे महत् फल प्राप्त हो सकता है, 'नाना मुनिर नाना मत' उक्तिके अनुसार किसीने सत्ययुग, किसीने त्रेतायुग, किसीने द्वापर युगको और उनके साधनोंको उत्तम बताया; अन्तमें यह निश्चय हुआ कि इसकी मीमांसा व्यासदेवके निकट चलकर की जाय।

सब मुनिगण व्यासदेवके आश्रममें पहुंचे, व्यासदेव पवित्रतोया जान्हवी नदीमें स्नान कर रहे थे मुनिगण एक वृक्षके नीचे खड़े हो गये और व्यासदेवके स्नान समाप्तिकी प्रतीक्षा करने लगे।

व्यासदेव दिव्य ज्ञानी थे, मुनिगणोंके आगमनका कारण समझ गये; अर्धस्नान अवस्था ही में नदीसे निकलकर मुनिगणोंको लक्ष्यकर "कलि तुम धन्यहो" "कलि तुम साधु हो" कह कर फिर स्नान करने लगे, मुनिगण दूरसे यह सुन रहे थे। स्नान आह्निक समाप्त होनेपर व्यासदेव अपने आश्रममें पहुंचे, इधर मुनिगण भी वहां उपस्थित हो गये, यथायोग्य अभिवादन आदिके अनन्तर व्यासदेवने मुनिगणोंसे आगमनका कारण पूछा।

मुनिगण बड़े विनीतभावसे बोले–"महाराज! हमलोग एक सन्देह निवृत्तिके लिये आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं, किन्तु वह हम पीछे निवेदन करेंगे, प्रथम हमलोग यह पूछना चाहते हैं कि नदीमें स्नान करते समय आपने "कलि धन्य है, कलि साधु हो" कहकर कलिका गुणगान किया था, इसका क्या तत्त्व है? यदि अनुचित नहीं तो कृपा कर हमको इसका तत्त्व बताइये। व्यासदेव मुसकुरा कर बोले, मुनिवरो! यदि आपलोगोंकी ऐसी इच्छा है तो सुनिये–

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन यत्।
द्वापरे यच्च मासेन अहोरात्रेण तत् कलौ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिसाध्विति भाषितम्॥

हे द्विजवरो !

सत्ययुगमें दस वर्ष परिश्रम करनेसे, त्रेतायुगमें एक वर्ष परिश्रम करनेसे और द्वापरयुगमें एक मास परिश्रम करनेसे तप, ब्रह्मचर्य और जपादिकसे जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें केवल अष्टप्रहर अर्थात् एक दिनरात्रिके परिश्रमसे मनुष्यको वही फल प्राप्त हो सकता है इसीलिये साधु ! साधु ! धन्य ! धन्य ! कहकर हमने कलियुगका गुणकीर्तन किया था।

मुनिगणोंने कहा महाराज ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें वर्षों परिश्रम कर ध्यान, यज्ञ, अर्चना, आदिसे जो फल बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है, कलियुगमें वह अहोरात्रिमें किस साधनसे प्राप्त हो सकता है ?
व्यासदेवने कहा--

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

अर्थात् सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे, द्वापरमें अर्चनासे जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें केवल केशव भगवान्के नामसंकीर्तनसे जीवको वह फल प्राप्त हो सकता है।

पाठकगण विचार कर सकते हैं कि कलिहत जीवोंकी न तो इतनी आयु ही है कि दश वर्ष निर्विघ्न परिश्रम कर ध्यान या तप कर सकें। न अर्थ प्राचुर्य ही इतना है कि बड़े बड़े यज्ञानुष्ठान कर सकें और न विधिपूर्वक अर्चना आदि ही करनेकी शक्ति है कि जिससे उनका अभीष्ट सिद्ध हो और भगवत्प्राप्ति हो सके।

इसलिये श्रीभगवान्ने ध्यान, तप, यज्ञादिकी समस्त शक्ति, असमर्थ, पुरुषार्थहीन, अर्थहीन और पराधीन कलिहत जीवोंपर दयार्द्र होकर अपने "नाम" में संचारित कर दी। नाममें प्रेम होनेसे भगवान्में प्रेम होता है, नाममें विश्वास रखनेसे भगवान्में विश्वास होता है क्योंकि नाम और नामीमें कुछ भेद नहीं है, जो नाम है, वही नामी है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें लिखा है--

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य रसविग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ॥

कृष्णनाम, चिन्तामणिस्वरूप स्वयं कृष्ण है चैतन्य रस विग्रह है, पूर्ण है, मायातीत है, नित्य युक्त है, नाम नामीके अभिन्नत्वके कारण अर्थात् अभेदके कारण जो गुण श्रीभगवान्में है वही उनके नाममें विद्यमान है।

श्रीचैतन्य-चरितामृतमें लिखा है--

कलि काले नामरूपे कृष्णअवतार ।
नाम हैते हय सर्व जगत निस्तार ॥
नाम विना कलि काले नाहीं और धर्म ।
सर्वमन्त्र सार नाम एई शास्त्रमर्म ॥

इस युगमें नामके बिना जीवकी और कोई गति ही नहीं है, यदि हमको इस असार संसारकी तापदग्ध ज्वालाओंसे बचाकर श्रीभगवान्के शान्तियुक्त सुशीतल चरणारविन्दोंमें आश्रय दान देनेवाला कोई साधन है तो वह केवल भगवन्नामकीर्तन ही है। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें लिखा है--

कृष्णमन्त्र हैते होबे संसार मोचन ।
कृष्णनाम हैते पाबे कृष्णचरण ॥

नामकीर्तनमें एक सरलता अद्वितीय है, इसमें देश, काल, पात्र, शुचि, अशुचिका कोई बन्धन नहीं है। चाहे जब चाहे जिस अवस्थामें भगवन्नामकीर्तन हो सकता है। लिखा भी है--

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा ।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तने ॥

यही नहीं, भगवन्नाममें यह भी शक्ति है कि ज्ञातरूपसे या अज्ञातरूपसे, श्रद्धासे, उपहाससे या अश्रद्धासे किसी प्रकारसे हरिनाम लेनेसे जीव तर जाता है इसका उदाहरण अजामिल है, महापापी अजामिलने मृत्युसमय भगवत्-नामके उद्देश्यसे नहीं, नारायण नामके अपने पुत्रको पुकारनेके उद्देश्यसे नारायण ! कहकर आह्वान किया। बस इसीमें उसकी मुक्ति हो गई।

फिर यदि विश्वाससे श्रद्धापूर्वक प्रेममय हरिनाम लिया जाय तो क्या उसके उद्धारमें या भगवत्प्राप्तिमें कुछ सन्देह है ?

नामस्मरणसे नामकीर्तनका महत्व अधिक है यथा–

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः ।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतृन्पुनाति च ॥

अर्थात् हरिनाम जप करनेवालेकी अपेक्षा उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तन करनेवाला शतगुण श्रेष्ठ है क्योंकि जप करनेवाला तो केवल अपनेही को पवित्र करता है परन्तु उच्चस्वरसे कीर्तन करनेवाला अपनेको तो पवित्र करता ही है, सुननेवाले जीव, जन्तु, पशु, पक्षी, कीट, पतंग सबको पुनीत एवं पवित्र करता है । श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिखा ही है ।

पशु पक्षी कीट आदि बोलीते ना पारे ।
शुनीलेई हरिनाम तारा सब तरे ॥
जपीले से हरिनाम आपनी से तरे ।
उच्च संकीर्तने पर उपकार करे ॥
अतएव उच्च करी कीर्तन करीले ।
शतगुण फल हय सर्व शास्त्रे बोले ॥

हरिनाम जपसे हरिनाम-कीर्तन क्यों श्रेष्ठ है ? यह शास्त्रकी युक्तिसे तो सिद्ध है ही, इसमें एक लौकिक युक्ति भी है ।

जप संख्यापूर्वक करना विधान है । संख्याके लिये मालाकी आवश्यकता पड़ती है और माला धरनेके लिये एक माला झोलीकी भी आवश्यकता है । फिर यहीं छुटकारा नहीं है, एक हाथ भी माला जप करनेमें घिर जाता है, अब बताइये, व्यवसायी, नौकरी-पेशा लोग दफ्तर आफिस, कोठियों में जाकर लिखा पढ़ी, काम काज करेंगे या माला झोली लटकाकर विचारे भजन करेंगे ।

नाम-कीर्तनमें यह असुविधा कुछ नहीं है; आप दफ्तर जाइये, कोठी पर काम काज करिये लिखा पढ़ी करिये, मोटरमें जाइये, सिर्फ मुखसे–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

यह महामंत्र कीर्तन करते जाइये, न संख्याकी आवश्यकता है न मालाकी और न झोलीकी ! हाथ भी दोनों कामकाज लिखापढ़ीके लिये खाली रहेंगे । इसीलिये भजन या जपसे नामसंकीर्तन सुलभ और श्रेष्ठ है, अब कहिये इतनी सुविधा होते हुए, इतनी सरलता होते हुए, इतना सरल साधन होते हुए भी हरिनाम-कीर्तनमें हमारा विश्वास, हमारी रुचि न हो, और हम हरिनाम कीर्तन न करें तो इससे अधिक हमारे दुर्भाग्य और हमारी दुर्गतिका कारण और क्या हो सकता है ?

सोई भलो जो रामहिं गावै ।
श्वपच प्रसन्न होत बड़ सेवक, बिनु गुपाल द्विज जन्म न भावै ॥
बाद बिबाद यज्ञ व्रत साधै, कतहूं जाइ जन्म डहकावै ॥
होइ अटल जगदीश भजनमें, सेवा तासु चारि फल पावै ॥
कहूं ठौर नहिं चरण कमल बिनु, भृंगी ज्यों दशहूं दिशि धावै ॥
सूरदास प्रभु संतसमागम, आनन्द अभय निशान बजावै ॥

(सूरदासजी महाराज)

ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नाम जप सर्वोपरि साधन है

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रिय पाठकवृन्द ! बड़े हर्षका विषय है कि परम दयालु परमात्माकी परम कृपासे आज आप लोगोंकी सेवामें श्रीभगवन्नाम-महिमा पर कुछ निवेदन करनेका मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है ।

वास्तवमें नामकी महिमा वही पुरुष जान सकता है, जिसका मन निरन्तर श्रीभगवन्नाममें संलग्न रहता है, नामकी प्रिय और मधुर स्मृतिसे जिसके क्षण क्षणमें रोमाञ्च और अश्रुपात होते हैं, जो जलके वियोगमें मछलीकी व्याकुलताके समान क्षणभरके नाम वियोगसे भी विकल हो उठता है, जो महापुरुष निमेष-मात्रके लिये भी भगवान्‌के नामको नहीं छोड़ सकता और जो निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करते करते उसमें तल्लीन हो चुका है । ऐसा ही महात्मा पुरुष इस विषयके पूर्णतया वर्णन करनेका अधिकारी है और उसीके लेखसे संसारमें विशेष लाभ पहुंच सकता है ।

यद्यपि मैं एक साधारण मनुष्य हूं, उस अपरिमित गुणनिधान भगवान्‌के नामकी अवर्णनीय महिमाका वर्णन करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, तथापि अपने कतिपय मित्रोंके अनुरोधसे मैंने कुछ निवेदन करनेका साहस किया है । अतएव इस लेखमें जो कुछ त्रुटियां रही हों उनके लिये आप लोग क्षमा करें ।

महिमाका दिग्दर्शन ।

भगवन्नामकी अपार महिमा है, सभी युगोंमें इसकी महिमाका विस्तार है । शास्त्रों और साधु महात्माओंने सभी युगोंके लिये मुक्तकण्ठसे नाम-महिमाका गान किया है परन्तु कलियुगके लिये तो इसके समान मुक्तिका कोई दूसरा उपाय ही नहीं बतलाया गया । यथा—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

कलियुगमें केवल श्रीहरिनाम ही कल्याणका परम साधन है, इसको छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां, कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

सत्ययुगमें भगवान् विष्णुके ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञोंसे, द्वापरमें भगवान्‌की सेवा पूजा करनेसे जो फल होता है, कलियुगमें केवल हरिके नाम-संकीर्तनसे वही फल प्राप्त होता है ।

कलियुग केवल नाम अधारा ।
सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा ॥
कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास
गाइ राम-गुण-गण विमल, भव तरु बिनहिं प्रयास
राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरहु, जो चाहसि उजियार ॥
सकल कामना हीन जे, रामभक्ति रसलीन ।
नाम सुप्रेम पीयूष ह्रद, तिनहुं किये मन मीन ॥
शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुणगाथ ॥
रामचन्द्रके भजन बिनु, जो चह पद निर्वाण ।
ज्ञानवन्त अपि सोपि नर, पशु बिनु पूंछ विषाण ॥
वारि मथे बरु होइ घृत, सिकताते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भवतरहिं, यह सिद्धान्त अपेल ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा ।
भक्त होहिं मुद मङ्गलवासा ॥

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भक्त शिरोमणि भे प्रह्लादू॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने वश करि राखेहु रामू॥
अपर अजामिल गज गणिकाऊ।
भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ॥
चहुं युग तीन काल तिहुं लोका।
भये नाम जपि जीव विशोका॥
कहऊँ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

नाम महिमामें प्रमाणोंका पार नहीं है। हमारे शास्त्र इससे भरे पड़े हैं, परन्तु अधिक विस्तारभयसे यहां इतने ही लिखे जाते हैं। संसारमें जितने मत मतान्तर हैं प्रायः सभी ईश्वरके नामकी महिमाको स्वीकार करते और गाते हैं। अवश्य ही रुचि और भावके अनुसार नामोंमें भिन्नता रहती है। परमात्माका नाम कोई सा भी क्यों न हो, सभी एकसा लाभ पहुंचानेवाले हैं। अतएव जिसको जो नाम रुचिकर प्रतीत हो वह उसीके जपका ध्यानसहित अभ्यास करे।

मेरा अनुभव।

कुछ मित्रोंने मुझे इस विषयमें अपना अनुभव लिखनेके लिये अनुरोध किया है। परन्तु जब कि मैंने भगवन्नामका विशेष संख्यामें जप ही नहीं किया तब मैं अपना अनुभव क्या लिखूं? भगवत्कृपासे जो कुछ यत्किञ्चित् नाम–स्मरण मुझसे हो सका है उसका माहात्म्य भी मुझसे पूर्णतया लिखा जाना कठिन है।

नामका अभ्यास मैं लड़कपनसे ही करने लगा था। जिससे शनैः शनैः मेरे मनकी विषयवासना कम होती गयी और पापोंसे हटनेमें मुझे बड़ी ही सहायता मिली। काम क्रोधादि अवगुण कम होते गये, अन्तःकरणमें शान्तिका विकास हुआ। कभी कभी नेत्र बन्द करनेसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अच्छा ध्यान भी होने लगा। सांसारिक स्फुरणा बहुत कम हो गयी। भोगोंमें वैराग्य हो गया। उस समय मुझे वनवास या एकान्त स्थानका रहन सहन अनुकूल प्रतीत होता था।

इस प्रकार अभ्यास होते होते एक दिन स्वप्नमें श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीसहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए और उनसे बातचीत भी हुई। श्रीरामचन्द्रजीने वर मांगनेके लिये मुझसे बहुत कुछ कहा पर मेरी इच्छा मांगनेकी नहीं हुई, अन्तमें बहुत आग्रह करनेपर भी मैंने इसके सिवाय और कुछ नहीं मांगा कि "आपसे मेरा वियोग कभी न हो।" यह सब नामका ही फल था!

इसके बाद नाम जपसे मुझे और भी अधिकतर लाभ हुआ, जिसकी महिमा वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। हां, इतना अवश्य कह सकता हूं कि नाम जपसे मुझे जितना लाभ हुआ है उतना श्रीमद्भगवद्गीताके अभ्यासको छोड़कर अन्य किसी भी साधनसे नहीं हुआ!

जब जब मुझे साधनसे च्युत करनेवाले भारी विघ्न प्राप्त हुआ करते थे, तब तब मैं प्रेमपूर्वक भावनासहित नाम जप करता था और उसीके प्रभावसे मैं उन विघ्नोंसे छुटकारा पाता था। अतएव मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि साधन पथके विघ्नोंको नष्ट करने और मनमें होनेवाली सांसारिक स्फुरणाओंका नाश करनेके लिये स्वरूप चिन्तनसहित प्रेमपूर्वक भगवन्नाम जप करनेके समान दूसरा कोई साधन नहीं है। जब कि साधारण संख्यामें भगवन्नामका जप करनेसे ही मुझे इतनी परम शान्ति, इतना अपार आनन्द और इतना अनुपम लाभ हुआ है जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, तब जो पुरुष भगवन्नामका निष्कामभावसे ध्यानसहित नित्य निरन्तर जप करते हैं, उनके आनन्दकी महिमा तो कौन कह सकता है?

नाम जप किस लिये करना चाहिये?

श्रुति कहती है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(कठ: २। १६)

"यह ओंकार अक्षर ही ब्रह्म है, यही परब्रह्म है, इस ओंकाररूप अक्षरको जानकर जो मनुष्य जिस वस्तुको चाहता है उसको वही मिलती है।"

श्रुतिके इस कथनके अनुसार, कल्पवृक्षरूप भगवद्भजनके प्रतापसे जिस वस्तुको मनुष्य चाहता है, उसे वही मिल सकती है। परन्तु आत्माका कल्याण चाहनेवाले सच्चे प्रेमी भक्तोंको तो निष्कामभावसे ही भजन करना चाहिये। शास्त्रोंमें निष्काम प्रेमी भक्तकी ही अधिक प्रशंसाकी गयी है। भगवान्‌ने भी कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥
(गीता ७। १६। १७)

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझे भजते हैं। उनमें भी नित्य मेरेमें एकीभावसे स्थित हुआ अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूं और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

इस प्रकार निष्काम प्रेमपूर्वक होनेवाले भगवत् भजनके प्रभावको जो मनुष्य जानता है वह एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूलता। और भगवान् भी उसको नहीं भूलते। भगवान्‌ने स्वयं कहा भी है:—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है; उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूं और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है क्योंकि वह मेरेमें एकीभावसे नित्य स्थित है।

भला! सच्चा प्रेमी क्या अपने प्रेमास्पदको छोड़कर कभी दूसरेको मनमें स्थान दे सकता है? जो भाग्यवान् पुरुष परम सुखमय परमात्माके प्रभावको जानकर उसे ही अपना एक मात्र प्रेमास्पद बना लेते हैं वे तो अहर्निश उसीके प्रिय नामकी स्मृतिमें तल्लीन रहते हैं। वे दूसरी वस्तु न कभी चाहते हैं और न उन्हें सुहाती ही है।

अतएव जहांतक ऐसी अवस्था न हो वहांतक ऐसा अभ्यास करना चाहिये। नामोच्चारण करते समय मन प्रेममें इतना मग्न हो जाना चाहिये कि उसे अपने शरीरका भी ज्ञान न रहे। भारीसे भारी संकट पड़नेपर भी विशुद्ध प्रेम-भक्ति और भगवत् साक्षात्कारिताके सिवाय अन्य किसी भी सांसारिक वस्तुकी कामना, याचना या इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये।

निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक विधिसहित जप करनेवाला साधक बहुत शीघ्र अच्छा लाभ उठा सकता है।

यदि कोई शङ्का करे कि बहुत लोग भगवन्नामका जप किया करते हैं परन्तु उनके कोई विशेष लाभ होता हुआ नहीं देखा जाता, तो इसका उत्तर यह हो सकता है कि उन लोगोंने या तो विधिसहित जपका अभ्यास ही नहीं किया होगा। या अपने जपरूप परमधनके बदलेमें तुच्छ सांसारिक भोगोंको खरीद लिया होगा, नहीं तो उन्हें अवश्य ही विशेष लाभ होता, इसमेंकोई सन्देह नहीं है।

इसलिये नामजप किसी प्रकारकी भी छोटी बड़ी कामनाके लिये न करके केवल भगवत्‌के विशुद्ध प्रेमके लिये ही करना चाहिये।

नाम जप कैसे करना चाहिये?

महर्षि पतञ्जलिजी कहते हैं—

"तस्य वाचकः प्रणवः।" (१।२७)

"उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ओंकार है।"

"तज्जपस्तदर्थभावनम्" (१।२८)

"उस परमात्माके नाम जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् स्वरूपका चिन्तन करना!"

'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'
(१।२९)

"उपर्युक्त साधनसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है।"

इससे यह सिद्ध होता है कि नाम जप नामीके स्वरूपचिन्तनसहित करना चाहिये। स्वरूपचिन्तन युक्त नाम जपसे अन्तरायोंका नाश और भगवत्प्राप्ति होती है।

यद्यपि नामी नामके ही अधीन है। श्रीगोस्वामीजी महाराजने कहा है।

देखिय रूप नाम आधीना।
रूपज्ञान नहिं नाम विहीना॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेखे॥

इसलिये स्वरूपचिन्तनकी चेष्टा किये बिना भी केवल नामजपके प्रतापसे ही साधकको समयपर भगवत्-स्वरूपका साक्षात्कार अपने आप ही हो सकता है। परन्तु उसमें विलम्ब हो जाता है। भगवान्‌के मनमोहन स्वरूपका चिन्तन करते हुए जपका अभ्यास करनेसे बहुत ही शीघ्र लाभ होता है। क्योंकि निरन्तर चिन्तन होनेसे भगवान्‌की स्मृतिमें अन्तर नहीं पड़ता। इसीलिये भगवान्‌ने श्रीगीताजीमें कहा है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥(८।७)

अतएव हे अर्जुन! तूं सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मनबुद्धिसे युक्त हुआ तूं निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा। भगवान्‌की इस आज्ञाके अनुसार उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते और प्रत्येक सांसारिक कार्य करते समय साधकको नाम जपके साथही साथ मनबुद्धिसे भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन और निश्चय करते रहना चाहिये। जिससे क्षणभरके लिये भी उसकी स्मृतिका वियोग न हो।

इसपर यदि कोई पूछे कि किस नामका जप अधिक लाभदायक है? और नामके साथ भगवान्‌के कैसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये? तो इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि परमात्माके अनेक नाम हैं उनमेंसे जिस साधककी जिस नाममें अधिक रुचि और श्रद्धा हो। उसे उसीके नाम जपसे विशेष लाभ होता है। अतएव साधकको अपनी रुचिके अनुकूल ही भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये। एक बात अवश्य है कि जिस नामका जप किया जाय, स्वरूपका चिन्तन भी उसीके अनुसार ही होना चाहिये। उदाहरणार्थ—

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस मन्त्रका जप करनेवालेको सर्वव्यापी वासुदेवका ध्यान करना चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय।" मन्त्रका जप करनेवालेको चतुर्भुज श्रीविष्णु भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। "ॐ नमः शिवाय" मन्त्रका जप करनेवाले-को त्रिनेत्र भगवान् शंकरका ध्यान करना उचित है। केवल ओंकारका जप करनेवालेको सर्वव्यापी सच्चिदा-नन्दघन शुद्धब्रह्मका चिन्तन करना उचित है। श्रीराम-नामका जप करनेवालेको श्रीदशरथनन्दन भगवान् रामचन्द्रजीके स्वरूपका चिन्तन करना लाभप्रद है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस मन्त्रका जप करनेवालेके लिये श्रीराम, कृष्ण विष्णु या सर्वव्यापी ब्रह्म आदि सभी रूपोंका अपनी इच्छा और रुचिके अनुसार ध्यान किया जा सकता है। क्योंकि यह सब नाम सभी रूपोंके वाचक हो सकते हैं।

इन उदाहरणोंसे यही समझना चाहिये कि साधक-को गुरुसे जिस नाम रूपका उपदेश मिला हो। जिस नाम और जिस रूपमें श्रद्धा प्रेम और विश्वासकी अधिकता हो तथा जो अपनी आत्माके अनुकूल प्रतीत होता हो, उसे उसी नाम रूपके जप ध्यानसे अधिक लाभ हो सकता है।

परन्तु नाम जपके साथ ध्यान जरूर होना चाहिये। वास्तवमें नामके साथ नामीकी स्मृति होनी अनिवार्य भी है। मनुष्य जिस जिस वस्तुके नाम-

का उच्चारण करता है उस उस वस्तुके स्वरूपकी स्मृति उसे एकबार अवश्य होती है और जैसी स्मृति होती है, उसीके अनुसार भला बुरा परिणाम भी अवश्य होता है। जैसे कोई मनुष्य कामके वशीभूत होकर जब किसी स्त्रीका स्मरण करता है तब उसकी स्मृतिके साथ ही उसके शरीरमें काम जागृत होकर वीर्यपातादि दुर्घटना-को घटा देता है। इसी प्रकार वीररस और करुणारस प्रधान वृतान्तोंकी स्मृतिसे तदनुसार ही मनुष्यकी वृत्तियां और उसके भाव बन जाते हैं। साधु पुरुषको याद करनेसे मनमें श्रेष्ठ भावोंकी जागृति होती है और दुराचारीकी स्मृतिसे बुरे भावोंका आविर्भाव होता है जब लौकिक स्मरणका ऐसा परिणाम अनिवार्य है तब परमात्माके स्मरणसे परमात्माके भाव और गुणोंका अन्तःकरणमें आविर्भाव हो, इसमें तो सन्देह ही क्या है?

अतएव साधकको भगवान्के प्रेममें विह्वल होकर निष्कामभावसे नित्य निरन्तर दिन रात कर्तव्य कर्मोंको करते हुए भी ध्यानसहित श्रीभगवन्नाम जपकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

सत्संगसे ही नाम जपमें श्रद्धा होती है!

नामकी इतनी महिमा होते हुए भी प्रेम और ध्यान-युक्त भगवन्नाममें लोग क्यों नहीं प्रवृत्त होते। इसका उत्तर यह है कि भगवत्-भजनके असली मर्मको वही मनुष्य जान सकता है जिस पर भगवान्की पूर्ण दया होती है।

यद्यपि भगवान्की दया तो सदा ही सबपर समान भावसे है परन्तु जब तक उसकी अपार दयाको मनुष्य पहचान नहीं लेता, तबतक उसे उस दयासे लाभ नहीं होता। जैसे किसीके घरमें गड़ा हुआ धन है, परन्तु जबतक वह उसे जानता नहीं तबतक उसे कोई लाभ नहीं होता। परन्तु वही जब किसी जानकार पुरुषसे जान लेता है और यदि परिश्रम करके उस धनको निकाल लेता है तो उसे लाभ होता है। इसीप्रकार भगवान्की दयाके प्रभावको जाननेवाले पुरुषोंके संगसे मनुष्यको भगवान्की नित्य दयाका पता लगता है, दयाके ज्ञानसे भजनका मर्म समझमें आता है फिर उसकी भजनमें प्रवृत्ति होती है और भजनके नित्य निरन्तर अभ्याससे उसके समस्त संचित पाप समूल नष्ट होजाते हैं और उसे परमात्माकी प्राप्तिरूप पूर्ण लाभ मिलता है।

नाममें पापनाशकी स्वाभाविक शक्ति है।

यहां पर यदि कोई शङ्का करे कि यदि भगवान् भजन करनेवालेके पापोंका नाश कर देते हैं या उसे माफी दे देते हैं तो क्या उनमें विषमताका दोष नहीं आता? इसका उत्तर यह है कि जैसे अग्निमें जलानेकी और प्रकाश करनेकी शक्ति स्वाभाविक है इसीप्रकार भगवन्नाममें भी पापोंके नष्ट करनेकी स्वाभाविक शक्ति है। इसीलिये भगवान्ने श्रीगीताजीमें कहा है—

"समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्"
(९।२९)

"मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूं, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है परन्तु जो भक्त मेरेको प्रेमसे भजते हैं वे मेरेमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूं।"

इससे यह बात स्पष्ट होजाती है कि जैसे शीतसे व्यथित अनेक पुरुषोंमेंसे जो पुरुष अग्निके समीप जाकर अग्निका सेवन करता है उसीके शीतका निवारण कर अग्नि उसकी उस व्यथाको मिटा देती है परन्तु जो अग्निके समीप नहीं जाते उनकी व्यथा नहीं मिटती। इससे अग्निमें कोई विषमताका दोष नहीं आता, क्योंकि वह सभीको अपना ताप देकर उनकी व्यथा निवारण करनेको सर्वदा तैयार है। कोई समीप ही न जाय तो अग्नि क्या करे? इसीप्रकार जो पुरुष भगवान्का भजन करता है उसीके अन्तःकरणको शुद्ध करके भगवान् उसके दुःखोंका सर्वथा नाश करके उसका कल्याण कर देते हैं। इसलिये भगवान्में विषमताका कोई दोष नहीं आता।

नाम भजनसे ही ज्ञान हो जाता है।

(शङ्का) यह बात मान लीगयी कि भगवन्नामसे पापोंका नाश होता है परन्तु परमपदकी प्राप्ति उससे कैसे हो सकती है क्योंकि परमपदकी प्राप्ति तो केवल ज्ञानसे होती है।

(उत्तर) यह ठीक है। परमपदकी प्राप्ति ज्ञानसे ही होती है। परन्तु श्रद्धा, प्रेम और विश्वासपूर्वक निष्कामभावसे किये जानेवाले भजनके प्रभावसे भगवान् उसे अपना वह ज्ञान प्रदान करते हैं कि जिससे उसे भगवान्के स्वरूपका तत्त्वज्ञान हो जाता है और उससे उस साधकको परमपदकी प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

भगवान्ने कहा है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले, मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूं कि जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं। उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरणमें एकीभावसे स्थित हुआ अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकद्वारा नष्ट करता हूं।"

अतएव निरन्तर प्रेमपूर्वक निष्काम नाम जप और स्वरूप चिन्तनसे स्वतः ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और उस ज्ञानसे साधकको सत्वर ही परमपदकी प्राप्ति हो जाती है।

नामकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

कुछ भाई नामजपके महत्वको नहीं समझनेके कारण उसकी निन्दा कर बैठते हैं, वे कहा करते हैं कि–रामराम करना और 'टांय टांय' करना एक समान ही है। साथ ही यह भी कहा करते हैं कि नाम जपके ढोंगसे आलसी बनकर अपने जीवनको नष्ट करना है। इसी तरहकी और भी अनेक बातें कही जाती हैं।

ऐसे भाइयोंसे मेरी प्रार्थना है कि बिना ही जांच किये इस प्रकारसे नामजपकी निन्दा कर जप करनेवालोंके हृदयमें अश्रद्धा उत्पन्न करनेकी बुरी चेष्टा न किया करें। बल्कि कुछ समय तक नामजप करके देखें कि उससे क्या लाभ होता है। व्यर्थ ही निन्दा या उपेक्षा कर पापभाजन नहीं बनना चाहिये।

नामजपमें प्रमाद और आलस्य करना उचित नहीं।

बहुतसे भाई नामजप या भजनको अच्छा तो समझते हैं परन्तु प्रमाद या आलस्यवश भजन नहीं करते। परन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। इस प्रकार दुर्लभ परन्तु क्षणभंगुर शरीरको प्राप्त करके जो भजनमें आलस्य करते हैं उन्हें क्या कहा जाय? जीवनका सद्व्यय भजनमें ही है यदि अभी प्रमादसे इस अमूल्य सुअवसरको खो दिया तो पीछे सिवाय पश्चात्तापके और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। कबीरजीने कहा है–

मरोगे मरि जाओगे, कोइ न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसाओगे, छाड़ि बसंता गाम॥
आजकालकी पांच दिन, जंगल होगा बास।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर चरेंगे घास॥
आज कहे मैं काल भजूं, काल कहे फिर काल।
आजकालके करत ही, औसर जासी चाल॥
काल भजन्ता आज भज, आज भजन्ता अब।
पलमें परलय होयगी, फेरि भजेगा कब॥

अतएव आलस्य और प्रमादका परित्याग करके जिस किस प्रकारसे भी हो, उठते बैठते सोते और सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करते हुए सदा सर्वदा भजन करनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

"मा" बच्चोंको भुलानेके लिये उनके सामने नानाप्रकारके खिलौने डाल देती है, कुछ खानेके पदार्थ उनके हाथमें दे देती है, जो बच्चे उन पदार्थोंमें रम कर "मा" के लिये रोना छोड़ देते हैं मा, भी उन्हें छोड़कर अपना दूसरा काम करने लगती है परन्तु जो बच्चा किसी भी भुलावेमें न भूलकर केवल "मा मा" पुकारा करता है, उसे 'मा' अवश्यही अपनी गोदमें लेनेको बाध्य होती है ऐसे जिद्दी बच्चेके पास घरके सारे आवश्यक कामोंको छोड़कर भी माको तुरन्त आना और उसे अपने हृदयसे लगाकर दुलारना पड़ता है, क्योंकि माता इस बातको जानती है कि यह बच्चा मेरे सिवाय और किसी विषयमें भी नहीं भूलता है।

इसीप्रकार भगवान् भी भक्तकी परीक्षाके लिये उसकी इच्छानुसार उसे अनेक प्रकारके विषयोंका प्रलोभन देकर भुलाना चाहते हैं, जो उनमें भूल जाता है वह तो इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण होता है परन्तु जो भाग्यवान् भक्त संसारके समस्त पदार्थोंको तुच्छ, क्षणिक और नाशवान् समझ कर उन्हें लात मार देता है और प्रेममें मग्न होकर सच्चे मनसे उस सच्चिदानन्दमयी मातासे मिलनेके लिये ही लगातार रोया करता है। ऐसे भक्तके लिये सम्पूर्ण कामोंको छोड़कर भगवान्को स्वयं तुरन्त ही आना पड़ता है। महात्मा कबीरजी कहते हैं।

केशव केशव कूकिये, न कूकिये असार।
रात दिवसके कूकते, कभी तो सुनें पुकार॥
राम नाम रटते रहो, जबलग घटमें प्रान।
कबहुं तो दीनदयालके, भनक परेगी कान॥

इसलिये संसारके समस्त विषयोंको विषके लड्डू समझते हुए उनसे मन हटाकर श्रीपरमात्माके पावन नामके जपमें लग जाना ही परम कर्तव्य है। जो परमात्माके नामका जप करता है दयालु परमात्मा उसे शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर देते हैं।

यदि यह कहा जाय कि ईश्वर न्यायकारी है, भजनेवालेके ही पापोंका नाश करके उसे परमगति प्रदान करते हैं तो फिर उन्हें दयालु क्यों कहना चाहिये?

यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। संसारके बड़े बड़े राजा महाराजा अपने उपासकोंको बाह्य धनादि पदार्थ देकर सन्तुष्ट करते हैं परन्तु भगवान् ऐसा नहीं करते, उनका तो यह नियम है कि उनको जो जिस भावसे भजता है उसको वे भी उसी भावसे भजते हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

परमात्मा छोटे बड़ेका कोई ख्याल नहीं करते। एक छोटेसे छोटा व्यक्ति परमात्माको जिस भावसे भजता है, उनके साथ जैसा बर्ताव करता है, वे भी उसको वैसेही भजते और वैसाही बर्ताव करते हैं। यदि कोई उनके लिये रोकर व्याकुल होता है तो वे भी उससे मिलनेके लिये उसी प्रकार अकुला उठते हैं। यह उनकी कितनी दयाकी बात है?

अतएव इस अनित्य क्षणभंगुर नाशवान् संसारके समस्त मिथ्या भोगोंको छोड़कर उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी शुद्ध परमदयालु सच्चे प्रेमी परमात्माके पावन नामका निष्काम प्रेमभावसे ध्यानसहित सदा सर्वदा जप करते रहना चाहिये।

संसारके समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम जप ही सर्वोपरि युक्तियुक्त साधन है।

नाममहिमा।

(लेखक—महात्मा गांधीजी)

नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रक्खा है। द्वादश-मन्त्र, अष्टाक्षर इ० सब इस मोह जालमें फंसे हुए मनुष्यके लिये शांतिप्रद हैं इसमें कुछ भी शङ्का नहीं है। जिससे जिसको शांति मिले उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परन्तु जिसको शांतिका अनुभवही नहीं है और जो शांतिकी खोजमें है उसको तो अवश्य रामनाम पारसमणि बन सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे हैं उसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परन्तु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी राम नामरूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः राम उच्चारणमें एकाक्षर ही है और ॐ कार और राममें कोई फरक नहीं है। परन्तु नाममहिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकती है। श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।

(सूरदासजी)

गोविन्द सो पति पाइ कहा मन अनत लगावै ।
गोपाल भजन बिन सुख नहीं जो चहुं दिशि धावै ॥ १ ॥
फलकी आशा चित्त धारि जो वृक्ष बढ़ावै ।
महामूढ़ जो मूल तजि शाखा जल नावै ॥ २ ॥
सहज भजै नन्दलालको सो सब शुचि पावै ।
सूरदास 'हरिनाम' लिये दुख निकट न आवै ॥ ३ ॥

(तुलसीदासजी)

रसना सांपिनि, वदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न रामसों, ताहि विधाता बाम ॥ ४ ॥
राम नाम रति राम गति, राम नाम विश्वास ।
सुमिरत शुभ मंगल कुशल, चहुं दिशि तुलसीदास ॥५॥
प्रीति प्रतीति सुरीतिसों, राम नाम जपु राम ।
तुलसी तेरो है भलो, आदि मध्य परिणाम ॥ ६ ॥
राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथकी आस ।
बरषत बारिद बूंद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥ ७ ॥

(नारायण स्वामी)

नारायण हरि भजनमें, तू जिन देर लगाय ।
का जाने या देरमें, श्वास रहे की जाय ॥ ८ ॥
नारायण तू भजन कर, कहा करैंगे क्रूर ।
अस्तुति निन्दा जगत्की, दोउनके शिर धूर ॥ ९ ॥

(कबीरजी)

नाम जपत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जु चाम ।
कंचन देह केहि कामकी, जा मुख नाहीं नाम ॥१०॥
सुखके माथे सिल परौ, (जो) नाम हृदैसे जाय ।
बलिहारी वा दुःखकी (जो) पल पल नाम रटाय ॥११॥
शून्य मरै अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय ।
नाम—सनेही ना मरै, कह कबीर समझाय ॥१२॥

(नानकजी)

भय नाशन दुर्मति हरन, कलिमंह हरिको नाम ।
निसिदिन नानक जो भजै, सफल होइ तेहि काम ॥१३॥
जिह्वा गुण गोविन्द भजो, कान सुनो हरिनाम ।
कह नानक सुनरे मना, परहिं न यमके धाम ॥१४॥

(रैदासजी)

रैदास कहे जाके हृदय, रहै रैन दिन राम ।
सो भगता भगवन्त सम, क्रोध न व्यापै काम ॥१५॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाडि सकल प्रतिवाद ॥१६॥

(दादूदयालजी)

दादू नीका नाम है, हरि हिरदै न बिसार ।
मूरति मन मांहे बसै, सांसै सांस संभारि ॥१७॥
सांसै सांस संभालता, इक दिन मिलि हैं आय ।
सुमिरण पैंडा सहजका, सतगुरु दिया बताय ॥१८॥

(मलूकदासजी)

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय
ओठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥१९॥
जीवहुं ते प्यारे अधिक, लागैं मोहिं राम ।
बिन हरि नाम नहीं मुझे, और किसीसे काम ॥२०॥

(सुन्दरदासजी)

सुन्दर सतगुरु यों कह्यो, सकल शिरोमणि नाम
ताको निशि दिन सुमरिये, [illegible]

सुन्दर सबही सन्त मिलि, सार लियो हरि नाम ।
तक्र तजी घृत काढिकै और किया केहि काम ॥२२॥

(तुकारामजी)

करतलसों तारी देत राम मुख बोली ।
बस जली तुरत पातक-पुञ्जोंकी होली ॥२३॥
मुखसों कहत राम नाम पंथ चलत जोई ।
पावत नर पद पद पर यज्ञफलहिं सोई ॥२४॥
(अनुवादित)

(रामदासजी)

राम नाम केवल जपै, करै न कछु श्रम और ।
सदा सम्हालें राम तेहिं, रक्षक प्रभु सब ठौर ॥२५॥
राम भजनमें एकसे, वर्ण चार नर-नार ।
जड़ मूरख भी हों तुरत, भवसागरसे पार ॥२६॥
(अनुवादित)

(धरनीदासजी)

धरनी सब दिन सुदिन है, कबहुं कुदिन है नाहिं ।
लाभ चहूं दिशि चौगनो, (जो) हरि सुमिरन हिय माहिं ॥

(जगजीवनदासजी)

मारहिं काटहिं बाटहिं, जानि मानि करु त्रास ।
छांडि देहु गफिलाई, गहहु नामकी आस ॥२८॥

(दरिया साहिबजी बिहारवाले)

जाके पूंजी नाम है, कबहिं न होवै हानि ।
नाम बिहूना मानवा, जमके हाथ बिकानि ॥२९॥

(दरिया साहिबजी मारवाड़वाले)

दरिया परछे नामके, दूजा दिया न जाय ।
तन मन आतम वारिके, राखीजै उर मांय ॥३०॥
दरिया सूरज ऊगिया, चहुं दिसि भया उजास ।
नाम प्रकासै देहमें, (तौ) सहल भरमका नास ॥३१॥

(दूलनदासजी)

दूलन यहि जग जनमके, हरदम रटना नाम ।
केवल नाम सनेह बिन, जन्म समूह हराम ॥३२॥

(बुल्ला साहिबजी)

जग आये जग जागिये, पगिये हरिके नाम ।
बुल्ला कहै विचारिकै, छोडि देहु तन धाम ॥३३॥

(केशवदासजी)

जेहि घर केसो नहिं भजन, जीवन प्राण अधार ।
सो घर जमका गेह है, अन्त भये ते छार ॥३४॥
भजन भलो भगवान्‌को, और भजन सब धन्ध ।
तन सरवर मन हंस है केसो पूरन चन्द ॥३५॥

(चरणदासजी)

सकल सिरोमनि नाम है सब धर्मनके माहिं ।
अनन्य भक्त वह जानिये, सुमिरन भूले नाहिं ॥३६॥
हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी बहु नार ।
नाम बिना जम—लोकमें पावत दुःख अपार ॥३७॥
मनही मनमें जाप करु, दरपन उज्जल होय ।
दरसन होवे रामका, तिमिर जाय सब खोय ॥३८॥

(सहजो बाईजी)

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय ।
परख नहीं कंगालकूं, सहजे डारै खोय ॥३९॥
सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप ।
नाम बिना धिरकार है, सुन्दर धनवन्त भूप ॥४०॥

(दयाबाईजी)

दयादास हरि नाम ले, या जगमें यह सार ।
हरि भजते हरिही भये, पायो भेद अपार ॥४१॥
रामनामके लेतही, पातक झरत अनेक ।
रे नर हरिके नामकी, राखो मनमें टेक ॥४२॥

(गरीबदासजी)

नाम रसायन पीजिये, यहि औसर यहि दाव ।
फिर पीछे पछतायगा, चला चली हो जाव ॥४३॥
नाम रटत नहिं ढीलकर, हरदम नाम उचार ।
अमी महा रस पीजिये, बहुतक बारम्बार ॥४४॥

(भीखासाहिवजी)

जाप जपै जो प्रीतिसों, बहु विधि रुचि उपजाय ।
सांझ समय औ प्रात लगि, तत्त्व पदारथ पाय॥ ४५ ॥
रामको नाम अनन्त है, अन्त न पावै कोय ।
भीखा जस लघु बुद्धि है, नाम तवन सुख होय ॥४६॥

(पलटू साहबजी)

जप तप तीरथ वर्त है, योगी जोग अचार ।
पलटू नाम भजे बिना, कोऊ न उतरै पार ॥४७॥

(फुटकर)

सर्वी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय ।
रञ्चक घटमें संचरे, सब तन कञ्चन होय ॥४८॥
सार एक हरि नाम है, जगत विषय बिन सार ।
जैसे मोती ओसको, बिनसत लगे न बार ॥४९॥
जबहि नाम हृदय धरा, भयो पापका नाश ।
मानो चिनगी अग्निकी, पड़ी पुराने घास ॥५०॥

(बाई मीराजी)

म्हारे नातो नामको रे और न नातो कोय ।
मीरा व्याकुल बिरहणी हरि दर्शण दीज्यो मोय॥५१॥

"एक तूं ही मन भावे है"

(मारवाड़-शेखावाटीकी बोलीमें)

(१)

अबतो कुछ भी नहीं सुहावे एक तूंही मन भावे है ।
तनें मिलणने आज मेरो हिवड़ो उजल्यो आवे है ॥
तड़फ रह्यो ज्यूं मछली जल बिन अब तू क्यूं तरसावे है ।
दरश दिखाणेमें देरी कर क्यूं अब और सतावे है ॥

(२)

पण जो इसी बातमें तेरो चित राजी होतो होवे ।
तौ कोई भी आँट नहीं मने चाहे जितणो दुख होवे ॥
तेरे सुखसे सुखिया हूं मैं, तेरे लिये प्राण रोवे ।
मेरी खातर प्रियतम! अपणे सुखमें मत कांटा बोवे ॥

(३)

पण या निश्चै समझ तेरे मिलणेकी खातर मेरा प्राण ।
क्षण क्षणमें है व्याकुल होवै दरशणकी है भारी टाण ॥
बांध तुड़ाकर भाग्या चाहै मानै नहीं किसीकी काण ।
आठूं पहर उड्यासा डोलै पलक पलककी समझै हाण ॥

(४)

पण प्यारा! तेरी राजीमें है नित राजी मेरो मन ।
प्राणाधिक तूं, लोक दोनूंको मेरे जीवन-धन ॥
नहीं मिलै तो तेरी मरजी पण तनमन तेरे अरपन ।
लोक-वेद है तूंही मेरो तूंही मेरो परम रतन ॥

(५)

चातककी ज्यूं सदा उडीकूं कदे नहीं मुंहने मोड़ूं ।
दुख देवै, मारै, तड़फावै तो भी नेह नहीं तोड़ूं ।
तरसा तरसाकर जी लेवै तो भी तने नहीं छोड़ूं ।
ताकूं नहीं दूसरी कानी तेरेमें ही जी जोड़ूं ॥

श्रीमच्छंकराचार्यजीका कृष्णप्रेम

(प्रेषक गंगातीरनिवासी पूज्यपाद श्रीअच्युतमुनिजी महाराज)

प्रबोधसुधाकर नामक ग्रन्थमें श्रीमच्छङ्कराचार्यजी ने द्विधाभक्ति, भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान, सगुण निर्गुण की एकता और भगवान्‌के अनुग्रहका बड़ा सुन्दर विवेचन किया है, 'कल्याण'के पाठकोंके लाभार्थ हम उसे यहां भावार्थ सहित देते हैं:—

चित्ते सत्त्वोत्पत्तौ तडिदिव बोधोदयो भवति ।
तर्ह्येव स स्थिरः स्याद्यदि चित्तं शुद्धिमुपयाति ॥१॥

शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा
कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते ।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या
प्रक्षाल्यते चेतः ॥२॥

यद्वत्समलादर्शे सुचिरं भस्मादिना शुद्धे ।
प्रतिफलति वक्त्रमुच्चैः शुद्धे चित्ते तथा ज्ञानम् ॥३॥

जानन्तु तत्र बीजं हरिभक्त्या ज्ञानिनो ये स्युः ।
मूर्तं चैवामूर्तं द्वे एव ब्रह्मणो रूपे ॥४॥

इत्युपनिषत्तयोर्वा द्वौ भक्तौ भगवदुपदिष्टौ ।
क्लेशादक्लेशाद्वा मुक्तिः स्यादेतयोर्मध्ये ॥५॥

स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्तिरुद्दिष्टा ।
प्रारम्भे स्थूला स्यात्सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च ॥६॥

स्वाश्रमधर्माचरणं कृष्ण-
प्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम् ।
विविधोपचारकरणैर्हरिदासैः
संगमः शश्वत् ॥७॥

कृष्णकथासंश्रवणे महोत्सवः सत्यवादश्च ।
परयुवतौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता ॥८॥

ग्राम्यकथासूद्वेगः
सुतीर्थगमनेषु तात्पर्यम् ।
यदुपतिकथावियोगे व्यर्थं
गतमायुरिति चिन्ता ॥९॥

एवं कुर्वति भक्तिं
कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना ।
समुदेति सूक्ष्मभक्तिर्यस्या-
हरिरन्तराविशति ॥१०॥

स्मृतिसत्पुराणवाक्यैर्यथाश्रुतायां हरेर्मूर्तौ ।
मानसपूजाभ्यासो
विजननिवासेऽपि तात्पर्यम् ॥११॥

सत्यं समस्तजन्तुषु कृष्णस्यावास्थितेर्ज्ञानम् ।
अद्रोहो भूतगणे ततस्तु भूतानुकम्पा स्यात् ॥१२॥

प्रमितयदृच्छा लाभे सन्तुष्टिर्दारपुत्रादौ ।
ममताशून्यत्वमतो निरहङ्कारत्वमक्रोधः ॥१३॥

मृदुभाषिता प्रसादो
निजनिन्दायां स्तुतौ समता ।
सुखदुःखशीतोष्णद्वन्द्वसहिष्णु
त्वमापदो न भयम् ॥१४॥

निद्राहारविहारेष्वनादरः
सङ्गराहित्यम् ।
वचने चानवकाशः कृष्ण-
स्मरणेन शाश्वती शान्तिः ॥१५॥

केनापि गीयमाने
हरिगीते वेणुनादे वा ।

आनन्दाविर्भावो
युगपत्स्याद्धृष्टसात्विकोद्रेकः ॥१६॥
तस्मिन्ननुभवति मनः
प्रगृह्यमाणं परमात्मसुखम् ।
स्थिरतां याते तस्मिन् याति
मदोन्मत्तदन्तिदशाम् ॥१७॥
जन्तुषु भगवद्भावं भगवति
भूतानि पश्यति क्रमशः ।
एतादृशी दशा चेत्तदैव
हरिदासवर्यः स्यात् ॥१८॥

(प्रबोधसुधाकर श्लोक १६६–१८३)

"चित्तमें सत्वकी उत्पत्ति होने पर बिजलीकी तरह बोध हो जाता है और यदि चित्त शुद्ध हो चुका हो तो वह बोध उसी समय स्थिर हो जाय। अन्तरात्मा (चित्त) की शुद्धि श्रीकृष्ण के चरणकमलकी भक्ति बिना नहीं होती। जैसे साबुन से मिले हुए जल के द्वारा वस्त्र प्रक्षालन किया जाता है इसी प्रकार भक्ति से चित्त धुलता है। जैसे मलिन दर्पणको भस्म आदिसे भलीभांति साफ कर लेने पर उसमें मुखका प्रतिबिम्ब ठीक पड़ता है, इसी प्रकार ज्ञान भी शुद्ध चित्तमें होता है। १–३"

जो हरिभक्तिसे ज्ञानी हुए हैं वे उसमें भक्तिको ही बीज समझें, ब्रह्मके मूर्त्त और अमूर्त्त दो ही रूप हैं। यह उपनिषद् है, भगवान्‌ने दो ही प्रकारके भक्त बतलाये हैं। उन दोनोंमें से एकको मुक्ति क्लेशसे मिलती है, दूसरेको बिना ही क्लेशके मिल जाती है। हरिभक्ति दो प्रकारकी कही गई है। स्थूल और सूक्ष्म। प्रारंभमें स्थूल होती है, फिर उसीसे सूक्ष्म हो जाती है। ४-६॥

अपने वर्णाश्रमधर्मका आचरण, अनेक उपचारोंसे नित्य श्रीकृष्णमूर्तिका पूजनोत्सव, सदा हरिदासों का सङ्ग, श्रीकृष्णकी कथाश्रवणमें महोत्सव, सत्यभाषण, पर स्त्री, पर-धन और परनिन्दासे पराङ्मुखता; ग्राम्य कथामें (विषयी स्त्री पुरुषोंकी व्यर्थ चर्चामें) उद्वेग, तीर्थगमनमें प्रीति, यदुपति श्रीकृष्णकी कथाका वियोग होनेपर यह चिन्ता कि जीवनका इतना समय व्यर्थ गया।७-९॥

इन साधनोंसे भक्ति करनेवाले पुरुषमें श्रीकृष्ण कथा की कृपासे वह सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न होती है जिसके भीतर श्रीहरि प्रवेश कर जाते हैं।१०।

स्मृति और सत्पुराणोंके वचनोंसे श्रीहरिकी जैसी मूर्ति सुनी है, उसमें मानस-पूजाका अभ्यास, निर्जन स्थानके निवासमें प्रीति, सत्य, सब जीवोंमें श्रीकृष्णकी स्थितिका ज्ञान, भूतसमूहमें अद्रोह, इन साधनोंसे समस्त भूतोंमें कृपा उत्पन्न हो जाती है। ११-१२।

थोड़ेसे यदृच्छा लाभमें सन्तोष, स्त्री पुत्रादिमें ममता का अभाव, निरहंकारता, अक्रोध, मृदुभाषण, प्रसन्नता, अपनी निन्दा और स्तुतिमें समभाव, सुख–दुःख, शीत–उष्णादि द्वन्द्वोंमें सहनशीलता, विपत्तिमें निर्भयता, निद्रा-आहार-विहारादिमें अनादर, आसक्ति–हीनता, व्यर्थ वचन बोलनेमें अनवकाश (समय न मिलना) श्रीकृष्णके स्मरणसे पूर्ण शान्ति, किसी पुरुषने श्रीहरिका गीत गाया हो या मुरली बजाई हो तो उसे सुनते ही तत्-क्षण आनन्दका आविर्भाव और सात्विक हर्षका उल्लास॥ १३-१६॥

ऐसे अनुभवसे मन जब परमात्म-सुखको ग्रहण करके स्थिर हो जाता है तब (प्रेमसे) उसकी दशा मदसे मत्त गजराजकी सी हो जाती है, वह सब जीवोंमें भगवान्‌के भावको और उनसे भगवान्‌में सब जीवोंको देखता है, ऐसी दशा हो जानेपर ही वह श्रेष्ठ हरिदास होता है। १७-१८।

ध्यानकी विधि

यमुनातटनिकटस्थित वृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि स्थाप्य ॥१९॥
तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्
पीताम्बरपरिधानं चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम् ।२०।

आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम् ।
मन्दस्मितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम् ॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्तं स्वलंकारान् ।
गलविलुलितवनमालं स्वतेजसापास्तकलिकालम् ॥

गुञ्जारवालिकलितं गुञ्जा-
पुञ्जान्विते शिरसि ।
भुञ्जानं सहगोपैः कुञ्जान्त-
र्वर्तिनं हरिं स्मरत ॥२३॥

मन्दारपुष्पवासितमन्दानिल-
सेवितं परानन्दम् ।
मन्दाकिनीयुतपदं नमत
महानन्ददं महापुरुषम् ॥२४॥

सुरभीकृतदिग्वलयं सुरभिशतै-
रावृतं सदा परितः ।
सुरभीतिक्षपणमहासुरभीमं
यादवं नमत ॥२५॥

कन्दर्पकोटिसुभगं वाञ्छितफलदं
दयार्णवं कृष्णम् ।
त्यक्त्वा कमन्यविषयं
नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते ॥२६॥

पुण्यतमामतिसुरसां मनोऽभिरामां
हरेः कथां त्यक्त्वा ।
श्रोतुं श्रवणद्वन्द्वं ग्राम्यं
कथमादरं भवति ॥२७॥

दौर्भाग्यमिन्द्रियाणां कृष्णे
विषये हि शाश्वतिके ।
क्षणिकेषु पापकरणेष्वपि
सज्जन्ते यदन्यविषयेषु ॥२८॥

(प्रबोधसुधाकर १८४--१९३)

"यमुनातटके निकटस्थित बृन्दावनके अति रमणीय किसी काननमें, कल्पवृक्षकी तलभूमिमें चरण पर चरण रखकर बैठे हुए मेघश्याम, जो अपने तेजसे विश्वको प्रकाशित कर रहे हैं, पीताम्बर धारण किये हुएहैं, चन्दन कर्पूरसे जिनका शरीर लिप्त हो रहा है, जिनके नेत्र कानों तक पहुंचे हुए हैं, जिन्होंने कानोंमें कुण्डल धारण किये हैं, जिनका मुख कमल मन्द हास से युक्त है, जो कौस्तुमणिसे युक्त सुन्दर हार पहने हुए हैं, जो अपने प्रकाशसे कंकण अंगूठी आदि अलङ्कारों को शोभित कर रहे हैं, वनमाला जिनके गलेमें लटक रही है, अपने तेजसे जिन्होंने कलिकालका निरास करदिया है, गुञ्जापुञ्जसे युक्त सिर पर गुञ्जा और भ्रमरोंके शब्द हो रहे हैं, ऐसे किसी कुञ्जके अन्दर बैठ कर गोपोंके साथ भोजन करते हुए श्रीहरिका स्मरण करो ॥ १९-२३

जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त मन्द पवनसे सेवित हैं, गंगाजी जिनके चरणकमलमें स्थित हैं, जो महा-आनन्दके दाता हैं, ऐसे परमानन्दस्वरूप महापुरुषको नमस्कार करो। दसों दिशाओंको जिन्होंने सुगन्धित कर दिया है, सुरभि सदृश सैकड़ों गायोंने जिनको चारों ओर से घेर रक्खा है, देवताओंके भयको नाश करनेके लिये जो भयानक महासुररूप धारण करनेवाले हैं, उन यादवको नमस्कार करो। जो करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर हैं, जो वाञ्छित फलके दाता हैं, ऐसे दया समुद्र श्रीकृष्णको छोड़कर ये नेत्रयुगल और किस विषयके दर्शनका उत्साह करें। अति पवित्र, अति सुन्दर, रसवती, मनोरम श्रीकृष्ण कथाको छोड़कर ये कर्णयुगल संसारी पुरुषोंकी चर्चा सुननेके लिये कैसे आदर करें। सदा विद्यमान श्रीकृष्ण रूपी विषयके होते हुए भी पापके साधन क्षणिक अन्य विषयोंमें प्रीति करना इन्द्रियोंका दुर्भाग्यही है।२४-२८

(अपूर्ण)

चुने हुए अमूल्य रत्न

"ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे एकान्त स्थानमें अकेलेका ही मन प्रसन्नतापूर्वक स्थिर रहे। प्रफुल्लित चित्तसे एकान्तमें श्वासके द्वारा निरन्तर नामजप करनेसे ऐसा हो सकता है।"

"भगवत् प्रेम एवं भक्ति-ज्ञान वैराग्य सम्बन्धी शास्त्रोंको पढ़ना चाहिये।"

"एकान्त देशमें ध्यान करते समय चाहे किसी भी बातका स्मरण क्यों न हो, उसको तुरन्त भुला देना चाहिये। इस संकल्प-त्यागसे बड़ा लाभ होता है।"

"धनकी प्राप्तिके उद्देश्यसे कार्य करने पर मन संसारमें रम जाता है, इसलिये सांसारिक कार्य बड़ी सावधानीके साथ केवल भगवत्की प्रीतिके लिये ही करना चाहिये। इस प्रकारसे भी अधिक कार्य न करे, क्योंकि कार्यकी अधिकतासे उद्देश्यमें परिवर्तन हो जाता है।"

"सांसारिक पदार्थों और मनुष्योंसे मिलना जुलना कम रखना चाहिये।"

"संसार सम्बन्धी बातें बहुत ही कम करनी चाहिये।"

"बिना पूछे न तो किसीके अवगुण बताने चाहिये और न उनकी तरफ ध्यान ही देना चाहिये।"

"सबके साथ निष्काम और समभावसे प्रेम करना चाहिये।"

"नाम जपका अभ्यास कभी नहीं छोड़ना चाहिये, नाम-जपमें बाधक विषयोंका त्याग कर सदासर्वदा ऐसी ही चेष्टा करते रहना चाहिये कि जिससे हर्ष और प्रेमसहित नाम जपका अभ्यास निरन्तर बना रहे। ऐसा हो जाने पर भगवान्के दर्शनकी भी कोई आवश्यकता नहीं।"

"अभ्यास ऐसा तेज करना चाहिये कि जिसमें अपने शरीरका ज्ञान भी न रहे। भगवान्के स्वयं साकार स्वरूपमें आकर चेत कराने पर भी शरीरका ज्ञान न हो, जैसे श्रीसुतीक्ष्ण मुनिको भगवान् श्रीरामचन्द्रके द्वारा जगाये जाने पर भी शरीरका ज्ञान नहीं हुआ था।"

"ऐसी स्थिति शीघ्र प्राप्त करनेके लिये किसी बातकी भी परवाह न कर हर समय कटिबद्ध रहना चाहिये।"

"मनुष्यको समयकी कीमत जाननी चाहिये, समय प्रतिक्षण घट रहा है। मनुष्य शरीरका समय अमूल्य है। इसे भजन, ध्यान, सत्सङ्गरूप अमूल्य कामोंमें ही लगाना चाहिये। जिनका समय केवल पेट पालनेमें ही जाता है वे तो महान् पशु हैं।"

"संसारका काम करते हुए उस कामका बुरा मालूम होना केवल वैराग्य नहीं है। इसमें हरामीपन भी है। यदि केवल वैराग्य होता तो संसारका कुछ भी काम न करनेके समय निरन्तर भजन ध्यान ही हुआ करता।"

"खाना, पीना, चलना, फिरना, बोलना आदि सांसारिक कार्य तो बेगार हैं, जबरदस्ती करने पड़ते हैं, अपना निजका कार्य तो केवल एक भगवत्स्मरण ही है, जो हर समय करना चाहिये।"

"फलासक्ति छोड़कर मालिकके लिये जो कुछ भी कार्य किया जाता है, वह उसका भजन ही है (चाहे उसमें नाम-स्मरण न हो) इस भूलको भूल नहीं समझना चाहिये।"

"जब तक भजन ध्यानमें कठिनता प्रतीत होती है तब तक विश्वासकी त्रुटि है। वास्तवमें भजन ध्यानमें कोई परिश्रम नहीं है।"

—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

मीरा महिमा ।

(प्रेषक–शोभालालजी शास्त्री उदयपुर मेवाड़)

धनि धनि श्रीमीरा महरानी

गिरधरलाल-मृदुलपदपंकज विमल प्रेम रस सानी ॥ १ ॥

कुल-जन लोक-लाज सुख सम्पत्ति मान सनेह सगाई ।
छिन महँ सकल छांडि दृढ़ कीन्हीं गिरधरलाल मिताई ॥ २ ॥

निरखि निरखि पीतम छवि कबहुंक बार बार मुसकावै ।
करि करि सुरति श्यामकी कबहुंक नैनन नीर बहावै ॥ ३ ॥

कबहुंक मृदु मृणालसम सुन्दर भुजयुग हरि गर डारे ।
ओस भरे सरसिजसे नयननि हरिमुख छवि निहारे ॥ ४ ॥

कबहुंक नवकिसलय दुति निन्दक पियकर निज हिय लाये ।
ठाढ़ी रहत अचल प्रतिमासी निज तन सुधि बिसराये ॥ ५ ॥

कबहुंक पिय करते गहि कंकण निज कर मांहि धरावै ।
निज हिय हार निकारि कबहुं पीतमके हिय पहिरावै ॥ ६ ॥

कबहुंक इकटक नयननि निरखति हरि नयननिकी शोभा ।
कबहुंक अधरनि अटकि रहत जुग लोचन अलि मधुलोभा ॥ ७ ॥

हरि मुख लखि मुसकाइ कबहुं पुनि लेति बदन विधु ढांकी ।
नूपुर जटित मणिन महं निरखति माधव मुखकी झांकी ॥ ८ ॥

कबहुंक परमानन्द मगन ह्वै नृत्य करत हरि आगे ।
कबहुंक मधुर कण्ठसों हरिगुण गावत हिय अनुरागे ॥ ९ ॥

निज पर भेद नेकु नहिं मनमें भई प्रेम मद माती ।
गदगद कण्ठ नाम गिरधरको गावत दिन अरु राती ॥१०॥

भूली जगत देहसुधि भूली हरि बिन और न जानै ।
रात दिवस, घर बन, विष अमृत सकल एक करि मानै ॥ ११ ॥

हरिजन मुख शशि निरखत ही हिय प्रेम सिन्धु उमड़ावै ।
बोरत लोक लाज लघु द्वीपन भेद भाव बिनसावै ॥१२॥

खगमृग तरुगिरि अनल अनिल रवि सलिल भूमि आकास ।
सब महं सदा एक रस निरखत हरि मुख चन्द्र प्रकास ॥१३॥

हरि दर्शन आनन्द सुधा रस मत्त रहे सब काला ।
जानत नहिं शीतल कै ताती हरि विरहानल ज्वाला ॥१४॥

धनि धनि श्री राठौड़ वंश जिहिं श्रीमीरा प्रगटाई ।
धनि धनि श्री मेवाड़ भूमि जहं श्रीमीरा सरसाई ॥१५॥

धनि धनि गिरधरलाल, लही जिन्ह मीरा सङ्ग मिताई ।
धन्य धन्य ते नर जिन्ह निरखी नयननि मीराबाई ॥ १६ ॥

भगवान् क्या हैं और उनका ध्यान कैसे किया जा सकता है।

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् क्या हैं? इस सम्बन्धमें मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह मेरे अपने निश्चयकी बात है, हो-सकता है कि मेरा निश्चय ठीक न हो। मैं यह नहीं कहता कि दूसरोंका निश्चय ठीक नहीं है। परन्तु मुझे अपने निश्चयमें कोई सन्देह नहीं है, मैं इस विषयमें संशयात्मा नहीं हूं, तथापि दूसरोंके निश्चयको गलत बतानेका मुझे कोई अधिकार नहीं है।

भगवान् क्या हैं? इन शब्दोंका वास्तविक उत्तर तो यही है कि इस बातको भगवान् ही जानें। इसके सिवाय भगवान्के विषयमें उन्हें तत्त्वसे जाननेका ज्ञानी पुरुष उनके तटस्थ अर्थात् नजदीकका कुछ भाव बतला सकता है। वास्तवमें तो भगवान्के स्वरूप-को भगवान् ही जानते हैं, तत्त्वज्ञ लोग संकेतके रूपमें भगवान्के स्वरूपका कुछ वर्णन कर सकते हैं। परन्तु जो कुछ जानने और वर्णन करनेमें आता है वास्तव-में भगवान् उससे और भी विलक्षण हैं। वेद, शास्त्र और मुनि महात्मा परमात्माके सम्बन्धमें सदासे कहते ही आरहे हैं, किन्तु उनका वह कहना आजतक पूरा नहीं हुआ। अबतकके उनके सब वचनोंको मिलाकर या अलग अलग कर, कोई परमात्माके वास्तविक स्वरूप-का वर्णन करना चाहे, तो उसके द्वारा भी पूरा वर्णन नहीं होसकता। अधूरा ही रह जाता है। इस विवेचन-में यह तो निश्चय होगया कि, भगवान् हैं अवश्य, उनके होनेमें रत्तीभर भी शङ्का नहीं है, यह दृढ़ निश्चय है। अतएव जो आदमी भगवान्को अपने मनसे जैसा समझकर साधन कर रहे हैं, उसमें परि-वर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु सुधार कर लेना चाहिये। वास्तवमें साधन करनेवालोंमें कोई भी भूल-में नहीं हैं या एक रकम सभी भूलमें हैं। जो परमा-त्माके लिये साधन करता है, वह उसीके मार्गपर चलता है, इसलिये कोई भूलमें नहीं है और भूल-में इसलिये हैं कि, जिस किसी एक वस्तुको साध्य या ध्येय मानकर, वे उसकी प्राप्तिका साधन करते हैं उनके उस साध्य या ध्येयसे वास्तविक परमात्माका स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है। जो जानने, मानने और साधन करनेमें आता है, वह तो असली ध्येय परमा-त्माको बतानेवाला सांकेतिक लक्ष्य है। इसलिये जहां तक उस असलीकी प्राप्ति नहीं होती, वहांतक सभी भूलमें हैं ऐसा कहा गया है। परन्तु इससे यह नहीं मानना चाहिये कि, पहले भूलको ठीक करके फिर साधन करेंगे। ठीक तो कोई करही नहीं सकता, यथार्थ प्राप्तिके बाद आप ही ठीक होजाता है। इससे पहले जो होता है, सो अनुमान होता है और उस अनुमान से जो कुछ किया जाता है, वही उसकी प्राप्तिका ठीक उपाय है। जैसे एक आदमी द्वितीयाके चन्द्रमा-को देख चुका है, वह दूसरे न देखनेवालेको इशारे-से बतलाता है कि, तूं मेरी नजरसे देख उस वृक्षसे चार अंगुल ऊंचा चन्द्रमा है। इस कथनसे उसका

लक्ष्य वृक्षकी ओरसे होकर चन्द्रमा तक चला जाता है और वह चन्द्रमाको देखलेता है । वास्तवमें न तो वह उसकी आंखमें घुसकर ही देखता है और न चन्द्रमा उस वृक्षसे चार अंगुल ऊंचा ही है और न चन्द्र-मंडल जितना छोटा वह देखता है, उतना छोटा ही है। परन्तु लक्ष्य बंध जानेसे वह उसे देख लेता है । कोई कोई द्वितीयाके चन्द्रमाका लक्ष्य करानेके लिये सरपतसे बतलाते हैं, कोई इससे भी अधिक लक्ष्य करानेके लिये चूनेसे लकीर खींचकर या चित्र बनाकर उसे दिखाते हैं, परन्तु वास्तवमें चन्द्रमाके वास्तविक स्वरूपसे इनकी कोई समता नहीं । न तो चन्द्रमाका इनमें प्रकाश ही है, न यह उतने बड़े ही हैं और न इनमें चन्द्रमाके अन्य गुण ही हैं। इसीप्रकार लक्ष्यके द्वारा देखनेपर भगवान् देखे या जाने जासकते हैं। वास्तवमें लक्ष्य और उनके असली स्वरूपमें वैसा ही अन्तर है कि जैसा चन्द्रमा और उसके लक्ष्यमें । चन्द्रमाका स्वरूप तो शायद कोई योगी बता भी सकता है, परन्तु भगवान्का स्वरूप कोई बता नहीं सकता, क्योंकि यह वाणीका विषय नहीं है। वह तो जब प्राप्त होगा, तभी मालूम होगा । जिसको प्राप्त होगा वह भी उसे समझा नहीं सकेगा। यह तो असली स्वरूपकी बात हुई। अब यह बतलाना है कि साधक-के लिये वह ध्येय या लक्ष्य किस प्रकारका होना चाहिये और वह किस प्रकार समझा जा सकता है। इस विषयमें महात्माओंसे सुनकर और शास्त्रोंको सुन और देखकर, मेरे अनुभवमें जो बात निश्चयात्मक रूपसे जची, वही बतलाई जाती है । किसीकी इच्छा हो तो, वह उसे काममें ला सकता है ।

परमात्माके असली स्वरूपका ध्यान तो वास्तवमें बन नहीं सकता। जब तक नेत्रोंसे, मनसे और बुद्धि-से परमात्माके स्वरूपका अनुभव न हो जाय, तब तक जो ध्यान किया जाता है, वह अनुमानसे ही होता है। महात्माओंके द्वारा सुनकर, शास्त्रोंमें पढ़कर, चित्रादि देखकर साधन करनेसे साधकको परमात्माके दर्शन हो सकते हैं । पहले यह बात कही जा चुकी है कि, जो परमात्माका जिस प्रकार ध्यान कर रहे हैं, वे वैसा ही करते रहें, परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं। कुछ सुधारकी आवश्यकता अवश्य है ।

कुछ लोग निराकार शुद्ध ब्रह्मका ध्यान करते हैं, कुछ साकार दो भुजावाले और कुछ चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वास्तवमें भगवान् विष्णु, राम और कृष्ण जैसे एक हैं, वैसे ही देवी, शिव, गणेश और सूर्य भी उनसे कोई भिन्न नहीं। ऐसा अनुमान होता है कि लोगोंकी भिन्न भिन्न धारणा-के अनुसार एक ही परमात्माका निरूपण करनेके लिये, श्रीवेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना की है, जिस देवके नामसे जो पुराण बना, उसमें उसीको सर्वोपरि, सृष्टि कर्ता, सर्वगुणसम्पन्न, ईश्वर बतलाया गया। वास्तवमें नाम रूपके भेदसे सबमें उस एक ही परमात्माकी बात कही गयी है। नाम रूपकी भावना साधक अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं, यदि कोई एक स्तम्भको ही परमात्मा मानकर उसका ध्यान करे तो वह भी परमात्माका ही ध्यान होता है, उसमें ईश्वरका पूर्ण भाव होना चाहिये ।

साकार और निराकारके ध्यानमें साकारकी अपेक्षा निराकारका ध्यान कुछ कठिन है, फल दोनोंका एक ही है, केवल साधनमें भेद है। अतएव अपनी अपनी प्रीतिके अनुसार साधक निराकार या साकारका ध्यान कर सकते हैं ।

निराकारके उपासक साकारके भावको साथमें न रख कर केवल निराकारका ही ध्यान करें, तो भी कोई

आपत्ति नहीं, परन्तु साकारका तत्त्व समझकर परमात्माको सर्व देशी, विश्वरूप मानते हुए, निराकारका ध्यान करें तो फल शीघ्र होता है। साकारका तत्त्व न समझनेसे कुछ विलम्बसे सफलता होती है।

साकारके उपासकको निराकार, व्यापक ब्रह्मका तत्त्व जाननेकी आवश्यकता है, इसीसे वह सुगमता पूर्वक शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। भगवान्ने गीतामें प्रभाव समझकर ध्यानकरनेकी ही बड़ाई की है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता अ० १२।२)

हे अर्जुन! मेरेमें मनको एकाग्रकरके निरन्तर मेरे भजन, ध्यानमें लगे हुए * जो भक्तजन, अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए, मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मेरेको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

वास्तवमें निराकारके प्रभावको जानकर जो साकारका ध्यान किया जाता है, वही भगवत्की शीघ्र प्राप्तिके लिये उत्तम और सुलभ साधन है। परन्तु परमात्माका असली स्वरूप इन दोनोंसे ही विलक्षण है कि जिसका ध्यान नहीं किया जा सकता। निराकारके ध्यान करनेकी कई युक्तियां हैं। जिसको जो सुगम मालूम हो, वह उसीका अभ्यास करे। सबका फल एकही है। कुछ युक्तियां यहांपर बतलाई जाती हैं।

साधकको श्रीगीताकी अ०६।११ से १३ के अनुसार, एकान्त स्थानमें स्वस्तिक या सिद्धासनसे बैठकर, नेत्रोंकी दृष्टिको नासिकाके अग्र भागपर रखकर या आंखें बन्दकर (अपनी इच्छानुसार) नियमपूर्वक प्रतिदिन कमसे कम तीन घण्टेका समय ध्यानके अभ्यासमें बिताना चाहिये। तीन घण्टे कोई न कर सके तो दो करे, दो नहीं तो एक घण्टे अवश्य ध्यान करना चाहिये। शुरू शुरूमें मन न लगे तो १५-२० मिनिटसे आरम्भकर धीरे धीरे ध्यानका समय बढ़ाता रहे। बहुत शीघ्र प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले साधकोंके लिये तीन घण्टेका अभ्यास आवश्यक है। ध्यानमें नाम जपसे बड़ी सहायता मिलती है। ईश्वरके सभी नाम समान हैं, परन्तु निराकारकी उपासनामें ॐकार प्रधान है। योगदर्शनमें भी महर्षि पतञ्जलिने कहा है:—

'तस्य वाचकः प्रणवः।' 'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

(योगदर्शन स० पाद १।२७।२८)

उसका वाचक प्रणव (ॐ) है उस प्रणवका जप करना और उसके अर्थ परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

इन सूत्रोंका मूल आधार— "ईश्वरप्रणिधानाद्वा।" (योग० १।२३) है। इसमें भगवान्की शरण होनेको और उन दोनोंमेंसे पहलेमें भगवान्का नाम बतलाकर, दूसरेमें नाम जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कही गयी है।

महर्षि पतञ्जलिके परमेश्वरके स्वरूपसम्बन्धी अन्य विचारोंके सम्बन्धमें, मुझे यहांपर कुछ नहीं कहना है। यहांपर मेरा अभिप्राय केवल यही है कि, ध्यानका लक्ष्य ठीक करनेके लिये पतञ्जलिजीके कथनानुसार स्वरूपका ध्यान करते हुए नामका जप करना चाहिये। ॐ की जगह कोई 'आनन्दमय' या 'विज्ञानानन्दघन' ब्रह्मका जप करे, तो भी कोई आपत्ति नहीं है। भेद नामोंमें है, फलमें कोई फरक नहीं है।

* अर्थात् गीता अ० ११।५५ में लिखे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए।

जप सबसे उत्तम वह होता है, जो मनसे होता है, जिसमें जीभ हिलाने और ओष्ठसे उच्चारण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसे जपमें ध्यान और जप दोनों साथ ही होसकते हैं। अन्तःकरणके चार पदार्थोंमेंसे मन और बुद्धि दो प्रधान हैं, बुद्धिसे पहले परमात्माका स्वरूप निश्चयकरके उसमें बुद्धि स्थिर करले, फिर मनसे उसी सर्वत्र परिपूर्ण आनन्दमयकी पुनः पुनः आवृत्ति करता रहे। यह जप भी है और ध्यान भी। वास्तवमें आनन्दमयके जप और ध्यानमें कोई खास अन्तर नहीं है। दोनों काम एक साथ किये जासकते हैं। दूसरी युक्ति श्वासके द्वारा जप करनेकी है। श्वासोंके आते और जाते समय कण्ठसे नामका जप करे, जीभ और ओष्ठको बन्दकर श्वासके साथ नामकी आवृत्ति करता रहे, यही प्राणजप है, इसको प्राणद्वारा उपासना कहते हैं। यह जप भी उच्च श्रेणीका है। यह न होसके तो मनमें ध्यान करे और जीभसे उच्चारण करे परन्तु मेरी समझसे इनमें साधकके लिये अधिक सुगम और लाभप्रद श्वासके द्वारा किया जानेवाला जप है। यह तो जपकी बात हुई, असलमें जप तो निराकार और साकार दोनों प्रकारके ध्यानमें ही होना चाहिये। अब निराकारके ध्यानके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है--

एकान्त स्थानमें स्थिर आसन और चित्तसे बैठ कर, इसप्रकार अभ्यास करे। जो कोई भी वस्तु इन्द्रिय और मनसे प्रतीत हो, उसीको कल्पित समझकर उसका त्याग करता रहे। जो कुछ प्रतीत होता है सो है नहीं। स्थूल शरीर, ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि कुछ भी नहीं हैं, इसप्रकार सबका अभाव करते करते, अभाव करनेवाले पुरुषकी वह वृत्ति-(जिसे ज्ञान, विवेक और प्रत्यय भी कहते हैं, यह सब शुद्ध बुद्धिके कार्य हैं, यहांपर बुद्धिही इनका अधिकरण है, जिसके द्वारा परमात्माके स्वरूपका मनन होता है और प्रतीत होनेवाली प्रत्येक वस्तुमें यह नहीं है, ऐसा अभाव हो जाता है, इसीको वेदोंमें 'नेति नेति' ऐसा भी नहीं ऐसा भी नहीं कहा है।) भी शान्त होजाती है। उस वृत्तिका त्याग करना नहीं पड़ता, स्वयमेव होजाता है। त्यागकरनेमें तो त्याग करनेवाला, त्याज्य वस्तु और त्यागकी त्रिपुटी आजाती है। इसलिये त्याग करना नहीं बनता, होजाता है। जैसे, ईन्धनके अभावमें अग्नि स्वयमेव शान्त होजाती है, इसीप्रकार विषयोंके सर्वथा अभावसे वृत्तियां भी सर्वथा शान्त होजाती हैं। शेषमें जो बच रहता है, वही परमात्माका स्वरूप है। इसीको निर्बीज समाधि कहते हैं

'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।'

(योग० १।५१)

यहांपर यह शङ्का होती है कि, त्यागके बाद त्यागी बचता है, वह अल्प है, परमात्मा महान् है, इसलिये बच रहनेवालेको ही परमात्माका स्वरूप कैसे कहा जाता है। बात ठीक है, परन्तु वह अल्प वहीं तक है, जब तक वह एक सीमाबद्धस्थानमें अपनेको मानकर, बाकीकी सब जगह दूसरोंसे भरी हुई समझता है। दूसरी सब वस्तुओंका अभाव होजानेपर, शेषमें, बचाहुआ केवल एक तत्त्वही 'परमात्म तत्त्व' है। संसारको जड़से उखाड़कर फेंक देनेपर, परमात्मा आपही रह जाते हैं। उपाधियोंका नाश होते ही सारा भेद मिटकर अपार एकरूप परमात्माका स्वरूप रह जाता है, वही सब जगह परिपूर्ण और सभी देशकालमें व्याप्त है। वास्तवमें देशकाल भी उसमें कल्पित ही है। वह तो एक ही पदार्थ है, जो अपने ही आपमें स्थित है जो अनिर्वचनीय है, अचिन्त्य है। जब चिन्तनका सर्वथा त्याग होजाता है, तभी उस अचिन्त्य ब्रह्मका खजाना निकल पड़ता है, साधक

उसमें जाकर मिलजाता है। जब तक अज्ञानकी आड़से दूसरे पदार्थ भरे हुए थे, तबतक वह खजाना अदृश्य था, अज्ञान मिटनेपर एकही वस्तु रहजाती है, तब उसमें मिलजाना याने सम्पूर्ण वृत्तियोंका शान्त होकर, एकही वस्तुका रह जाना निश्चित है।

महाकाशसे घटाकाश तभीतक अलग है, जबतक घड़ा फूट नहीं जाता। घड़ेका फूटना ही अज्ञानका नाश होना है, परन्तु यह दृष्टान्त भी पूरा नहीं घटता। कारण घड़ा फूटनेपर तो उसके टूटे हुए टुकड़े आकाशका कुछ अंश रोक भी लेते हैं, परन्तु यहां अज्ञानरूपी घड़ेके नाश हो जानेपर, ज्ञानका जरासा अंश रोकनेके लिये भी कोई पदार्थ नहीं बच रहता। भूल मिटतेही जगत्का सर्वथा अभाव होजाता है। फिर जो बच रहता है, वही ब्रह्म है। उदाहरणार्थ जैसे, घटाकाश जीव है। महाकाश परमात्मा है। उपाधिरूपी घट नष्ट हो जानेपर, दोनों एकरूप हो जाते हैं। एकरूप तो पहले भी थे, परन्तु उपाधिभेदसे भेद प्रतीत होता था।

वास्तवमें आकाशका दृष्टान्त परमात्माके लिये सर्वदेशी नहीं है। आकाश जड़ है, परमात्मा जड़ नहीं; आकाश दृश्य है, परमात्मा दृश्य नहीं है, आकाश विकारी है, परमात्मा विकारशून्य है, आकाश अनित्य है महाप्रलयमें इसका नाश होता है, परमात्मा नित्य है, आकाश शून्य है उसमें सब कुछ समाता है, परमात्मा घन है उसमें दूसरेका समाना संभव नहीं। आकाशसे परमात्मा अत्यन्त विलक्षण है। ब्रह्मके एक अंशमें माया है, जिसे अव्याकृत प्रकृति कहते हैं,उसके एक अंशमें महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) है, जिस बुद्धिसे सबकी बुद्धि होती है। उस बुद्धिके एक अंशमें अहंकार है जिससे सब व्याप्त हैं, उस अहंकारके एक अंशमें आकाश, आकाशमें वायु, वायुमें अग्नि, अग्निमें जल और जलमें पृथिवी। इसप्रकारकी प्रक्रियासे यह सिद्ध होता है कि,समस्त ब्रह्माण्ड मायाके एक अंशमें है और वह माया परमात्माके एक अंशमें है, इस न्यायसे आकाश तो परमात्माकी तुलनामें अत्यन्त ही अल्प है परन्तु इस अल्पताका पता परमात्माके जानने पर लगता है। जैसे, एक आदमी स्वप्न देखता है, स्वप्नमें उसे दिशा, काल, आकाश, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात आदि समस्त पदार्थ भासते हैं, बड़ा विस्तार दीख पड़ता है, परन्तु आंख खुलते ही उस सारी सृष्टिका अत्यन्त अभाव हो जाता है, फिर पता लगता है कि वह सृष्टि तो अपने ही संकल्पसे अपने ही अन्तर्गत थी, जो मेरे अन्दर थी, वह अवश्य ही मुझसे छोटी वस्तु थी, मैं तो उससे बड़ा हूं। वास्तवमें तो थी ही नहीं, केवल कल्पना ही थी, परन्तु यदि थी भी तो भी अत्यन्त अल्प थी, मेरे एक अंशमें थी मेरा ही संकल्प था अतएव मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं थी। यह ज्ञान आंख खुलने पर—जागनेपर होता है इसी प्रकार परमात्माके सच्चे स्वरूपमें जागने पर यह सृष्टि भी नहीं रहती। यदि कहीं रहती है ऐसा मानें तो वह महापुरुषोंके कथनानुसार परमात्माके एक जरासे अंशमें और उसीके संकल्पमात्रमें रहती है।

इसलिये आकाशका दृष्टान्त परमात्मामें पूर्णरूपसे नहीं घटता। इतने ही अंशमें घटता है कि, मनुष्यकी दृष्टिमें जैसे आकाश निराकार है, ब्रह्म वास्तवमें वैसे ही निराकार है, मनुष्यकी दृष्टिमें जैसे आकाशकी अनन्तता भासती है, वैसे ही ब्रह्म सत्य अनन्त है। मनुष्यकी दृष्टिसे समझानेके लिये आकाशका उदाहरण है। इन सब वस्तुओंका अभाव होने पर प्राप्त होनेवाली चीज कैसी है, उसका स्वरूप कोई नहीं कह सकता, वह तो अत्यन्त विलक्षण है। सूक्ष्मभावके तत्त्वज्ञ सूक्ष्मदर्शी महात्मागण उसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं

ब्रह्म' कहते हैं। वह अपार है, असीम है, चेतन है, ज्ञाता है, घन है, आनन्दमय है, सुखरूप है, सत् है नित्य है, इस प्रकारके विशेषणोंसे वे उस विलक्षण वस्तुका निर्देश करते हैं। उसकी प्राप्ति हो जाने पर फिर कभी पतन नहीं होता, दुःख,क्लेश,सन्ताप, शोक अल्पता, विक्षेप, अज्ञान और पाप आदि सब विकारोंकी सदाके लिये आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। एक सत्य, ज्ञान, बोध आनन्दरूप ब्रह्मके बाहुल्यकी जागृति रहती है। यह जागृति भी केवल समझानेके लिये ही है। वास्तवमें तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'

(गीता १३। १२)

वह आदिरहित परमब्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् कहा जाता है और न असत् ही कहा जाता है। यदि ज्ञानका भोक्ता कहें तो कोई भोग नहीं है। यदि ज्ञानरूप या सुखरूप कहें तो कोई भोक्ता नहीं है। भोक्ता, भोग, भोग्य सब कुछ एक ही रह जाता है वह एक ऐसी चीज है जिसमें त्रिपुटी रहती ही नहीं। एक तो यह निराकारके ध्यानकी विधि है।

ध्यानकी दूसरी विधि।

एकान्त स्थानमें बैठकर आंखें मूंदकर ऐसी भावना करे कि, जैसे सत् चित् आनन्दघन रूपी समुद्रकी अत्यन्त बाढ़ आगयी है और मैं उसमें गहरा डूबा हुआ हूं। आनन्द-विज्ञानानन्दघन समुद्रमें निमग्न हूं। समस्त संसार परमात्माके संकल्पमें था, उसने संकल्प त्याग दिया इससे मेरे सिवाय सारे संसारका अभाव होकर, सर्वत्र एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही रह गये। मैं परमात्माका ध्यान करता हूं तो परमात्माके संकल्पमें मैं हूं, मेरे सिवाय और सबका अभाव होगया। जब परमात्मा मेरा संकल्प छोड़ देंगे, तब मैं भी नहीं रहूंगा, केवल परमात्मा ही रह जायंगे। यदि परमात्मा मेरा संकल्प त्याग न कर, मुझे स्मरण रक्खें तो भी बड़े आनन्दकी बात है। इसप्रकार भेदसहित निराकारकी उपासना करे।

इसमें साधनकालमें भेद है और सिद्धकालमें अभेद है परमात्माने सङ्कल्प छोड़ दिया बस एक परमात्मा ही रह गये। एक युक्ति यह है इसके सिवाय निराकारके ध्यानकी और भी कई युक्तियां हैं उनमेंसे दो युक्तियां कल्याणके वर्ष २ अंक २ में सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपाय शीर्षक लेखमें बतलाई गई हैं, वहां देखनी चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि निराकारका ध्यान दो प्रकारसे होता है। भेदसे और अभेदसे दोनोंका फल एक अभेद परमात्माकी प्राप्ति ही है। जो लोग जीवको सदा अल्प मानकर परमात्मासे कभी उसका अभेद नहीं मानते, उनकी मुक्ति भी अल्प होती है सदाके लिये वे मुक्त नहीं होते, उन्हें प्रलयकालके बाद वापस लौटना ही पड़ता है, इस मुक्तिवादसे वे ब्रह्मको प्राप्त होकरके भी अलग रह जाते हैं। (क्रमशः)

"वनमाली"

बेसर कान दियो मुख संदुर नूपुर हाथ सजे सब आली॥१॥
मोतिन कौ हरवा कटिमें कटि किंकणि धारि गरे सज चाली॥२॥
काजर कोर कपोलन पै झलकै कर जावककी शुचि लाली॥३॥
दौरि चलीं बृज नागरियां सब बेणु बजाइ जबै बनमाली॥४॥

गोविन्द राम अग्रवाल— हरपालपुर (बुंदेलखंड)